समूह

पाठ संरचना

6.0 पाठ के उद्देश्य

6.1 समूह का अर्थ एवं परिभाषाएँ

6.2 समूह के प्रकार

- 6.2.1 प्राथमिक समूह का अर्थ एवं परिभाषा
- 6.2.2 प्राथमिक समूह की विशेषताएँ
- 6.2.3 द्वितीयक समूह का अर्थ एवं परिभाषा
- 6.2.4 द्वितीयक समूह की विशेषताएँ
- 6.2.5 प्राथमिक तथा द्वितीयक समूहों में अन्तर

6.3 औपचारिक समूह

- 6.3.1 औपचारिक समूह का अर्थ एवं परिभाषा
- 6.3.2 औपचारिक समूह की विशेषताएँ
- 6.3.3 अनौपचारिक समूह का अर्थ एवं परिभाषा
- 6.3.4 अनौपचारिक समूह की विशेषताएँ

6.4 अन्तः समूह तथा वाह्य समूह

- 6.4.1 अन्तः समूह का अर्थ, परिभाषा एवं उपयोगिता
- 6.4.2 वाह्य समूह का अर्थ, परिभाषा एवं उपयोगिता

6.5 आकस्मिक तथा प्रयोगनात्मक समूह

- 6.5.1 आकस्मिक समूह का अर्थ एवं विशेषताएँ
- 6.5.2 प्रयोगनात्मक समूह का अर्थ एवं विशेषताएँ

6.6 गतिशील तथा स्थिर समूह

- 6.6.1 गतिशील समूह का अर्थ एवं विशेषता
- 6.6.2 स्थिर समूह का अर्थ एवं विशेषता

6.7 सदस्यता समूह तथा संदर्भ समूह

6.7.1 सदस्यता समूह का अर्थ एवं विशेषता
6.7.2 संदर्भ समूह का अर्थ एवं विशेषता
6.8 समूह की संरचना
6.8.1 समूह का आकार
6.8.2 सदस्य संगठन
6.8.3 पद अनुक्रम
6.8.4 संचार जाल
6.8.5 वाह्य सामाजिक संदर्भ
6.9 समूहों के कार्य
6.9.1 आवश्यकताओं की संतुष्टि
6.9.2 आधिपत्य आवश्यकता की संतुष्टि
6.9.3 संबंधन आवश्यकता की संतुष्टि
6.9.4 नई आवश्यकताओं की संतुष्टि
6.9.5 समूह लक्ष्य की प्राप्ति
6.9.6 समूह विचारधारा का सम्पोषण
6.9.7 अनेक समूहों की सदस्यता
6.9.8 समाजीकरण का साधन
6.10 सारांश
6.11 पाठ में प्रयुक्त शब्द कुंजी
6.12 अभ्यास के लिए प्रश्न
(क) लघु उत्तरीय प्रश्न
(ख) दीर्घ उत्तरीय प्रश्न
6.13 अन्य उपयोगी पठन सामग्री

6.0 पाठ का उद्देश्य

प्रस्तुत पाठ का उद्देश्य समूह के विभिन्न पक्षों के सम्बन्ध में पाठकों को बतलाना है कि समूह का अर्थ क्या है? इसका स्वरूप क्या है तथा इसका निर्माण कैसे होता है? इस पाठ में समूह की संरचना तथा इसके कार्यों का भी वर्णन किया जायेगा। इसके अलावा समूह के प्रकारों का उल्लेख किया जायेगा और प्राथमिक समूह तथा द्वितीयक समूह के बीच अन्तरों पर प्रकाश डाला जायेगा। औपचारिक समूह, अनौपचारिक समूह, वाह्य समूह, अन्तः समूह, चल समूह, अचल

समूह, आदि का भी वर्णन किया जायेगा। अन्त में लघु उत्तरीय प्रश्न तथा दीर्घ उत्तरीय प्रश्न दिये जायेंगे ताकि पाठकगण अपनी उपलब्धि की जाँच स्वयं कर सकें। कुछ पुस्ताकों का सुझाव भी दिया जायेगा ताकि पाठकगण उन्हें पढ़ कर अतिरिक्त ज्ञान प्राप्त कर सकें।

6.1 समूह का अर्थ एवं परिभाषाएँ

समान्यत: समूह का तात्पर्य दो या अधिक वस्तुओं या व्यक्तियों के संग्रह से है। इस अर्थ में दो या अधिक विन्दुओं अथवा पुस्तकों के संग्रह की आवश्यक शर्तें हैं। पहली शर्त यह है कि वह दो या अधिक व्यक्तियों या प्राणियों का संग्रह हो और दूसरी शर्त यह है कि उन व्यक्तियों के बीच कार्यात्मक सम्बन्ध हो। यदि दो अपरिचित व्यक्ति किसी चौराहे पर एक ही साथ टहल रहे हों तो उन्हें समूह नहीं कहेंगे, क्योंकि उनके बीच कार्यात्मक सम्बन्ध या समान अनुभव का अभाव है। परंतु किसी विक्रेता के द्वारा सम्बोधित किये जाने पर दोनों किसी सामग्री खरीदने के लिए आपस में समझौता कर लें तो इन्हें एक समूह मानेंगे, क्योंकि अब दोनों के बीच कार्यात्मक सम्बन्ध स्थापित हो गया है। लिण्डग्रेन ने इसी अर्थ में समूह की परिभाषा देते हुए कहा है, "दो या अधिक व्यक्तियों के किसी कार्यात्मक सम्बन्ध में व्यस्त होने पर एक समूह का निर्माण होता है।"

व्यक्ति की तरह समूह की अपनी हस्ती होती है, जिसकी निश्चित विशेषतायें होती हैं, जिनका निरीक्षण तथा मापन किया जा सकता है और जिनके सम्बन्ध में भविष्यवाणी की जा सकती है। जब समूह का निर्माण हो जाता है तो इसके साथ ही एक विशेष संरचना विकसित हो जाती है- समूह के सदस्यों की भूमिकायें निर्धारित हो जाती हैं और सभी सदस्य अपने अधिकार तथा कर्त्तव्य के आलोक में एक-दूसरे के साथ पारस्परिक क्रिया करने लगते हैं, जिसका उद्देश्य किसी समान लक्ष्य की प्राप्ति होता है। इस प्रकार समूह एक सामाजिक इकाई का रूप धारण कर लेता है। शेरिफ एवं शेरिफ ने इसी दृष्टिकोण से समूह की परिभाषा दी है कि "एक समूह एक सामाजिक इकाई है जिसमें कुछ व्यक्ति होते हैं, जो एक दूसरे के प्रति अपेक्षाकृत निश्चित पद एवं भूमिका सम्बन्ध रखते हैं, और जिसके अपने प्रतिमान या मूल्य होते हैं जो कम-से-कम समूह के प्रति परिणाम के मामले में सदस्यों के व्यवहार को नियंत्रित करते हैं।"

लेकिन, यह परिभाषा भी सामाजिक समूह के जटिल स्वरूप को स्पष्ट करने में पूरी तरह सफल नहीं है। इस सम्बन्ध में बैरन तथा बिर्ने (1991) की परिभाषा अधिक संतोषप्रद है। उनके अनुसार "समूह वह सामाजिक इकाई है, जिसमें दो या अधिक व्यक्ति सामाजिक पारस्परिक क्रिया में लगे होते हैं, जो एक-दूसरे के साथ स्थिर, संरचित संबंध रखते हैं, जो एक दूसरे पर अवलंबित होते हैं, सामूहिक लक्ष्यों में साझेदार होते हैं तथा इस बात का बोध रखते हैं कि वास्तव में एक समूह के अंग हैं।"

यह एक लम्बी परिभाषा है, परन्तु समग्र तथा संतोषजनक है। इस परिभाषा में समूह पद की न्यूनतम आवश्यकता विशेषताओं को शामिल किया गया है, जिनके बिना समूह के संप्रत्यय को भीड़, संग्रह, पूर्णयोग या संकलन के संप्रत्यय से अलग करना संभव नहीं है। इस दृष्टिकोण से यह परिभाषा अधिक उपयोगी तथा व्यावहारिक है।

इस परिभाषा के विश्लेषण से निम्नलिखित बातें स्पष्ट होती हैं :

(क) समूह एक सामाजिक इकाई है। इस अर्थ में समूह वास्तव में संग्रह या पूर्णयोग से भिन्न है, क्योंकि इनमें सामाजिक इकाईपन का गुण नहीं होता है। अत: केवल ऐसे संग्रह को समूह कहा जाएगा जिसमें सामाजिक इकाई की विशेषता हो।

(ख) इस सामाजिक इकाई में कुछ व्यक्तियों का होना आवश्यक है। सदस्यों की संख्या कम-से-कम दो और अधिक-से-अधिक कुछ भी हो सकती है। यह विशेषता समूह को मूर्त तथा विशिष्ट बना देती है।

(ग) समूह के सदस्यों के बीच कार्यात्मक संबंध पाये जाते हैं। समूह के अन्तर्गत सदस्यों की स्थिति तथा उनके भूमिका सम्बन्ध अपेक्षाकृत निश्चित तथा स्थिर होते हैं।

(ख) समूह में होने वाली क्रियाओं, सदस्यों के बीच पारस्परिक सम्बन्धों, समूह-इकाई के स्थायीकरण आदि विषयों से सम्बन्धित सदस्यों के अनुभव एवं व्यवहार को नियंत्रित तथा संचालित करने के लिए समूह में कुछ निश्चित मूल्य एवं प्रतिमान अवश्य होते हैं।

(ङ) समूह के सदस्यों के सामने एक सामूहिक लक्ष्य होते हैं, जिसको प्राप्त करने के लिए वे सभी सक्रिय प्रयास करते हैं। यही लक्ष्य उनके बीच एकता, भाईचारा तथा एकात्मा का मूल आधार होता है।

(च) समूह के सदस्यों में इस बात का बोध होता है कि वे सभी एक खास समूह के अंशहैं। इसलिए, समूह के प्रति उनमें निष्ठा का भाव पाया जाता है।

6.2 समूह का वर्गीकरण या प्रकार

भिन्न-भिन्न समाज मनोवैज्ञानिकों ने भिन्न-भिन्न आधारों पर समूह को भिन्न-भिन्न प्रकारों में विभाजित किया है। हम यहाँ कुछ मुख्य कारकों की व्याख्या करना चाहेंगे।

6.2.0 प्राथमिक तथा द्वितीयक समूह

कूले (1909) ने वैयक्तिक आवेष्टन के आधार पर समूह को निम्नलिखित दो भागों में विभाजित किया है-

6.2.1 प्राथमिक समूह का अर्थ एवं परिभाषा

प्राथमिक समूह उसे कहते हैं जिसमें सदस्यों के बीच आमने-सामने का सम्बन्ध होता है। उनके बीच घनिष्ठ पारस्परिक सम्बन्ध होता है। परिवार प्राथमिक समूह का एक सुन्दर उदाहरण है। इसी प्रकार मनोरंजनात्मक समूह, कार्य समूह आदि प्राथमिक समूह के उदाहरण हैं जिनमें वैयक्तिक आवेष्टन अधिक पाया जाता है। लिण्डग्रेन (1969) ने प्राथमिक समूह की परिभाषा देते हुए कहा है कि "प्राथमिक समूह का तात्पर्य ऐसे समूहों से है, जिनमें पारस्परिक सम्बन्ध अधिक बारम्बारता (यानी प्रतिदिन) के साथ घटित होते हैं।"

प्राथमिक समूह के स्वरूप को और भी स्पष्ट करने के लिए इसकी विशेषताओं का उल्लेख कर देना आवश्यक होता है।

6.2.2 प्राथमिक समूह की विशेषताएँ

(1) प्राथमिक समूह का आकार प्रायः छोटा होता है। इसी कारण सदस्यों के बीच आमने-सामने का सम्बन्ध संभव होता है।

(2) प्राथमिक समूह के सदस्यों के बीच वैयक्तिक आवेष्टन अधिक पाया जाता है। इसी कारण वे एक दूसरे के सुख-दुःख से अधिक प्रभावित होते हैं। यह बात परिवार के सदस्यों के बीच स्पष्ट रूप से देखी जा सकती है।

(3) प्राथमिक समूह में अधिक स्थायित्व पाया जाता है। जैसे- परिवार एक प्राथमिक समूह है जो वर्षों तक कायम रहता है।

(4) प्राथमिक समूह के सदस्यों में घनिष्ठ पारस्परिक सम्बन्ध होता है।

(5) इस प्रकार के समूह के सदस्यों में अहम् आवेष्टन अधिक पाया जाता है। इसी कारण उनमें समूह के साथ आत्मीकरण का भाव अधिक पाया जाता है।

(6) इस प्रकार के समूह के सदस्यों में हम का भाव अधिक पाया जाता है। इस कारण उनमें एक दूसरे के प्रति भाईचारा, सहानुभूति तथा सहयोग की भावना अधिक होती है।

(7) प्राथमिक समूह के प्रति सदस्यों की मनोवृत्ति अधिक सकारात्मक तथा अनुकूल होती है। वे समूह उद्देश्य को

प्राप्त करने के लिए अधिक प्रयत्नशील होते हैं।

(8) इस प्रकार के समूह के सदस्यों के बीच जो पारस्परिक सम्बन्ध होते हैं, वे काफी स्वाभाविक तथा सहज होते हैं। उनमें कृत्रिमता नहीं पाई जाती है। बाप-बेटे के बीच, माँ-बेटी के बीच या पति-पत्नी के बीच इस प्रकार के सम्बन्ध देखे जा सकते हैं।

(9) इस प्रकार के समूह का मनोबल काफी ऊँचा होता है। मनोबल का आधार सकारात्मक कारक होते हैं, नकारात्मक कारक नहीं। निश्चित समूह उद्देश्य, प्रगति की ओर जागरूकता, लाभ-हानि में समानता का भाव, समूह समग्रता आदि सकारात्मक कारक है।

(10) कूले के अनुसार प्राथमिक समूह की एक प्रधान विशेषता यह है कि व्यक्तियों के सामाजिक स्वभाव, आदर्शों, वैयक्तिक मूल्य-तंत्र, आदि के निर्माण में इसका महत्त्वपूर्ण योगदान होता है।

6.2.3 द्वितीयक समूह का अर्थ एवं परिभाषाएँ

द्वितीय समूह का तात्पर्य ऐसे समूह से है जिसमें सदस्यों के बीच औपचारिक सम्बन्ध अधिक होता है और वैयक्तिक आवेष्टन कम होता है। सामाजिक संगठन, राजनीतिक दल, शैक्षिक संस्थान आदि द्वितीयक समूह के उदाहरण हैं। लिण्डग्रेन (1969) ने द्वितीयक समूह की परिभाषा देते हुए कहा है कि "द्वितीयक समूह अधिक अवैयक्तिक होते हैं तथा सदस्यों के बीच औपचारिक अथवा संविदात्मक सम्बन्ध होते हैं।"

द्वितीयक समूह के स्वरूप को और भी सष्ट करने के लिए इसकी विशेषताओं की व्याख्या कर देना अपेक्षित है।

6.2.4 द्वितीयक समूह की विशेषतायें

(1) द्वितीयक समूह अवैयक्तिक होता है। इसके सदस्यों के बीच पारस्परिक सम्बन्ध घनिष्ठ नहीं होता है। जैसे- किसी राजनीतिक दल के सदस्यों में घनिष्ठ सम्बन्ध का अभाव होता है।

(2) इस प्रकार के समूह का आकार बड़ा होता है। इसी कारण इसके सदस्यों के बीच आमने-सामने का सम्बन्ध संभव नहीं होता है।

(3) इस प्रकार के समूह के सदस्यों में भाईचारा, सहानुभूति तथा सहयोग का भाव बहुत कम होता है। वे एक-दूसरे के सुख-दुख से अधिक प्रभावित नहीं होते हैं।

(4) द्वितीयक समूह के सदस्यों में "मैं का भाव" अधिक होता है। उनमें "हम का भाव" कम होता है। प्रत्येक सदस्य दूसरों की अपेक्षा अपने कल्याण की चिंता अधिक करता है।

(5) इस प्रकार का समूह अधिक टिकाऊ नहीं होता है। जैसे- सामाजिक संगठनों तथा राजनीतिक दलों का निर्माण तथा विनाश होता रहता है। अत: द्वितीयक समूह में स्थायित्व का अभाव पाया जाता है। फिर भी, कुछ द्वितीयक समूह जैसे- धार्मिक संगठन तथा राष्ट्र सदियों तक कायम रहते हैं।

(6) इस प्रकार के समूह के सदस्यों के बीच शारीरिक सम्पर्क यदाकदा होता है।

(7) द्वितीयक समूह के सदस्यों के बीच स्वाभाविक सम्बन्धों का अभाव होता है। इस समूह का संगठन किसी विशेष उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए किया जाता है। जैसे- किसी राजनीतिक समूह, सामाजिक संगठन या औद्योगिक संगठन का निर्माण किसी निश्चित उद्देश्य को प्राप्त करने हेतु किया जाता है।

(8) इस प्रकार के समूह के सदस्यों में अहम् आवेष्टन का अभाव पाया जाता है। इसी कारण उनके बीच एकता का भाव कम होता है और सतही कार्यात्मक सम्बन्ध पाये जाते हैं।

(9) इस प्रकार के समूह का मनोबल नीचा होता है। सदस्यों में एकता, भाईचारा, अहम् आवेष्टन तथा आत्मीकरण की कमी के कारण समूह-मनोबल नीचा हो जाता है।

(10) द्वितीयक समूह का प्रभाव व्यक्ति के द्वितीयक समाजीकरण पर अधिक पड़ता है। यह समूह सदस्यों की

आवश्यकताओं की संतुष्टि में अप्रत्यक्ष रूप से सहायक होता है तथा सामाजिक परिवर्तन का आधार बनता है।

6.2.5 प्राथमिक तथा द्वितीयक समूहों में अन्तर

प्राथमिक समूह तथा द्वितीयक समूह की विशेषताओं का वर्णन अलग-अलग ऊपर किया जा चुका है। इससे दोनों समूहों के बीच अन्तरों का संकेत मिलता है। हम आसानी के लिए इनके अन्तरों को निम्नलिखित रूपों में व्यक्त कर सकते हैं :

	प्राथमिक समूह	द्वितीयक समूह
1.	इसका आकार छोटा होता है। जैसे - परिवार में सदस्यों की संख्या अपेक्षाकृत कम होती है।	इसका आकार बड़ा होता है। जैसे- किसी राजनीतिक दल या औद्योगिक संगठन में सदस्यों की संख्या अपेक्षाकृत अधिक होती है
2.	इसके सदस्यों के बीच घनिष्ठ पारस्परिक सम्बन्ध होता है।	इसके सदस्यों के बीच घनिष्ठ पारस्परिक सम्बन्ध नहीं होता है।
3.	इसके सदस्यों में औपचारिकता नहीं होती है या कम होती है।	इसके सदस्यों में अनौपचारिकता अधिक होती है।
4.	इसके सदस्यों में आमने-सामने का सम्बन्ध होता है।	इसके सदस्यों में आमने-सामने का सम्बन्ध नहीं होता है।
5.	आकार छोटा न होने के कारण इसके सदस्यों के बीच शारीरिक सम्पर्क संभव होता है।	आकार बड़ा होने के कारण इसके सदस्यों के बीच शारीरिक सम्पर्क संभव नहीं होता है।
6.	यह समूह अधिक टिकाऊ तथा स्थायी होता है।	यह समूह अपेक्षाकृत अस्थायी होता है।
7.	सदस्यों में भाईचारा, सहानुभूति तथा सहयोग का भाव पाया जाता है।	सदस्यों में इन विशेषताओं का अभाव पाया जाता है।
8.	सदस्यों में सहज तथा स्वाभाविक सम्बन्ध पाये जाते हैं।	सदस्यों में ऐसे सम्बन्धों का अभाव पाया जाता है।
9.	सदस्यों में ''हम का भाव'' अधिक पाया जाता है।	सदस्यों में ''मै का भाव'' अधिक पाया जाता है।
10.	इसमें समूह-बल प्राय: ऊँचा होता है।	इसमें समूह-बल प्राय: नीचा होता है।
11.	व्यक्ति के प्राथमिक समाजीकरण पर इसका अधिक प्रभाव पड़ता है।	व्यक्ति के प्राथमिक समाजीकरण पर इसका प्रभाव कम पड़ता है।
12.	इसमें समूह-प्रभावशीलता अधिक होती है समूह निर्णय का प्रभाव व्यक्ति पर अधिक पड़ता है।	इसमें समूह-प्रभावशीलता कम होती है। समूह-निर्णय का प्रभाव व्यक्ति पर अपेक्षाकृत कम पड़ता है।
13.	इसमें परिवर्तन की संभावना कम होती है।	इसमें परिवर्तन की संभावना अधिक होती है।

6.3 औपचारिक समूह

6.3.0 औपचारिक समूह का अर्थ एवं परिभाषा

औपचारिक समूह उसे कहते हैं जिसका निर्माण विधिवत् रूप से किसी लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए किया जाता है। जैसे- औद्योगिक संगठन एक औपचारिक समूह है, जिसका निर्माण आर्थिक लाभ के लिए किया जाता है। इसी प्रकार किसी भी संगठन के भिन्न-भिन्न विभागों को औपचारिक समूह कहा जायेगा। द्विवेदी (1979) ने इसकी परिभाषा देते हुए कहा है कि "औपचारिक समूहों का तात्पर्य ऐसे समूहों से है जिसका निर्माण किसी विशेष उद्देश्य या निर्धारित कार्य को प्राप्त करने के लिए वैधिक या औपचारिक अधिकार के अन्तर्गत किया जाता है।"

6.3.1 औपचारिक समूह की विशेषताएँ

औपचारिक समूह की कई विशेषताएँ हैं, जिनके आधार पर इसे अनौपचारिक समूह से अलग किया जा सकता है:

(क) औपचारिक समूह का निर्माण किसी खास उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए किया जाता है।

(ख) इसका निर्माण कुछ निश्चित नियमों या सिद्धांतों के आधार पर किया जाता है।

(ग) इसके सदस्यों के बीच औपचारिक सम्बन्ध होते हैं, स्वाभाविक नहीं।

(घ) यहाँ सदस्यों के बीच अवैयक्तिक सम्बन्ध पाये जाते हैं।

(ङ) सदस्यों में घनिष्ठ पारस्परिक सम्बन्ध नहीं होते हैं, भाईचारे एवं सहानुभूति का अभाव होता है, तथा समूह के साथ अहम् आवेष्टन बहुत कम होता है।

6.3.2 अनौपचारिक समूह का अर्थ एवं परिभाषा

अनौपचारिक समूह उस समूह को कहते हैं जिसका निर्माण व्यक्तियों के सहज एवं स्वाभाविक सम्पर्कों के आधार पर होता है। इसके निर्माण के लिए निश्चित नियम तथा कानून की आवश्यकता नहीं होती है। जैसे, परिवार एक अनौपचारिक समूह है, जिसकी स्थापना विधिवत् नहीं होती है, बल्कि स्वाभाविक तथा सहज रूप से। द्विवेदी (1979) के शब्दों में, "अनौपचारिक समूह का तात्पर्य व्यक्तियों के ऐसे संग्रह से है, जिसमें वैयक्तिक सम्पर्क तथा पारस्परिक क्रिया तथा व्यक्तियों में उपलब्ध सम्बन्धों की जाली होती है जो सभी औपचारिक समूह के सदस्यों में पाई जाती है।"

6.3.3 अनौपचारिक समूह की विशेषताएँ

अनौपचारिक समूह की अपनी विशेषताएँ हैं, जिनके कारण यह औपचारिक समूह से भिन्न हो जाता है :

(क) इस प्रकार के समूह की स्थापना विधिवत् रूप से नहीं बल्कि स्वाभाविक रूप से होती है।

(ख) इसके सदस्यों के बीच वैयक्तिक सम्बन्ध पाये जाते हैं।

(ग) सदस्यों के बीच भाईचारे तथा सहानुभूति का भाव पाया जाता है।

(घ) सदस्यों में समूह के प्रति धनात्मक मनोवृत्ति अधिक होती है तथा उनके बीच "हम का भाव" पाया जाता है।

(ङ) औपचारिक समूह की अपेक्षा अनौपचारिक समूह अधिक टिकाऊ होता है।

औपचारिक तथा अनौपचारिक समूहों की परिभाषाओं तथा विशेषताओं के अध्ययन से स्पष्ट हो जाता है कि ये दोनो समूह क्रमशः द्वितीयक समूह तथा प्राथमिक समूह के समान हैं। लिण्डग्रेन (1969) के शब्दों में "प्राथमिक समूह के अनौपचारिक होने की बहुत कम संभावना रहती है। जबकि औपचारिकता प्रायः द्वितीयक समूह की विशेषता होती है।"

6.4 अन्त:समूह तथा वाह्य समूह

6.4.1 अन्त:समूह का अर्थ, परिभाषा एवं उपयोगिता

रागात्मक सम्बन्ध के आधार पर समूह को दो भागों में विभाजित किया जाता है :

(1) अन्त:समूह तथा

(2) वाह्यसमूह।

अन्त:समूह को "हम-समूह" भी कहते हैं। इस प्रकार के समूह में सदस्यों में "हम का भाव" अधिक होता है। वे अपने समूह के प्रति निष्ठा का भाव रखते हैं। वे अपने समूह के मूल्यों तथा मानकों या प्रतिमानों को अधिक मान्यता देते हैं। परिवार, धार्मिक संगठन, राष्ट्र आदि अन्त: समूह के उदाहरण हैं। लिण्डग्रेन (1969) के अनुसार, "अन्त:समूह में परस्पर आत्मीकरण का द्वंद अनुभव इस हद तक पाया जाता है कि सदस्यगण समूह से अलग होने पर वियुक्त तथा बेठिकाने महसूस करते हैं।"

आधुनिक युग में अन्त: समूह का व्यवहार एक विशेष अर्थ में होने लगा है। इसका तात्पर्य ऐसे समूहों से है जिनको समाज में अधिक अधिकार प्राप्त है। ऐसे समूह के सदस्य किसी वाह्य समूह के सदस्य या सदस्यों से घृणा करते हैं तथा अपने समूह में शामिल नहीं होने देना चाहते हैं। यदि शामिल होने देते हैं, तो अधीनस्थ के रूप में। जैसे- किसी अन्त:समूह में किसी वाह्य समूह के सदस्य को नौकर की हैसियत से रखा जा सकता है।

6.4.2 वाह्य समूह का अर्थ, परिभाषा

वाह्य समूह को "वे समूह" भी कहते हैं। इस प्रकार के समूहों में निष्ठा का अभाव पाया जाता है। आत्मीकरण, अहम् आवेष्टन, सहानुभूति आदि विशेषताओं का अभाव पाया जाता है। अपने समूह के अलावा जो समूह है उसे वाह्य समूह कह सकते हैं। जैसे- हिन्दू धार्मिक संगठन (समूह) के सदस्य के लिए मुस्लिम धार्मिक संगठन एक वाह्य समूह है। सम्पूर्ण भारत को एक समूह मान लिया जाए तो हमारे लिए अन्य राष्ट्र जैसे- पाकिस्तान, चीन, लंका आदि वाह्य समूह कहलायेंगे। चैपलिन (1975) के अनुसार "वाह्य समूह उसे कहते हैं जिसके सदस्य मनोनीतकर्त्ता के समूह से परे होते हैं वे किसी उल्लिखित समूह विशेष के सदस्य नहीं होते हैं।"

आधुनिक युग में वाह्य समूह का व्यवहार एक विशेष अर्थ में किया जाने लगा है। समाज में जिस समूह को बहुत थोड़ा अधिकार प्राप्त होता है, उसे वाह्य समूह कहते हैं। ऐसे समूह को समाज में उतना सम्मान या प्रतिष्ठा प्राप्त नहीं होती है, जितना कि अन्त: समूह को। इस हैसियत से नौकरों, गुलामों, नटों आदि के समूह को वाह्य समूह कहेंगे।

अन्त: समूह तथ वाह्य समूह की व्याख्या दो अर्थों में की गयी है। परम्परागत अर्थ में अपने समूह के अलावा जो भी समूह है, वह वाह्य समूह है। इस अर्थ में एक ही समूह एक व्यक्ति, स्थान तथा समय के लिए अन्त: समूह तथा दूसरे व्यक्ति, स्थान तथा समय के लिए वाह्य समूह बन जाता है। इस अर्थ में दोनों समूहों की सामाजिक प्रतिष्ठा में कोई अन्तर नहीं होता है। सभी व्यक्ति अपने-अपने समूह के प्रति निष्ठा रखते हैं। आधुनिक अर्थ में अन्त:समूह को समाज में जो स्थान प्राप्त होता है, वह वाह्य समूह को प्राप्त नहीं है। इस अर्थ में दोनो समूह की रचना तथा इनके कार्य में स्पष्ट अन्तर देखे जाते हैं। अन्त: समूह के सदस्य जानबूझ कर वाह्य समूह के सदस्यों से अलग रहना चाहते हैं तथा सामाजिक दूरी बनाये रखने का प्रयास करते हैं।

अल्बर्डस (1935)ए हारलो (1951), आदि के अध्ययनों से पता चलता है कि अन्त: समूह के सदस्य वाह्य समूह के प्रति घृणा तथा बैर-भाव रखते हैं तथा आपस में संगठित रहते हैं। जीलर आदि (1962), हौफमैन एवं मायर (1961) के अनुसार जो अन्त: समूह वाह्य समूह के सदस्यों को अपने अन्दर शामिल होने की अनुमति देता है, वह अधिक सर्जनात्मक तथा प्रभावशाली होता है।

6.5 आकस्मिक तथा प्रयोजनात्मक समूह

6.5.1 आकस्मिक समूह का अर्थ एवं विशेषता

प्रयोजन या उद्देश्य के आधार पर समूह को दो भागों में विभाजित किया गया है- आकस्मिक समूह तथा प्रयोजनात्मक समूह। आकस्मिक समूह उसे कहते हैं जिसका निर्माण बिना किसी उद्देश्य या प्रयोजन के अचानक हो जाता है। जैसे, जब दो-चार अजनबी टहलते-टहलते किसी दूकान पर जमा होते हैं, किसी चीज खरीदने के लिए आपस में कार्यात्मक रूप से संगठित हो जाते हैं तो एक समूह का निर्माण हो जाता है, जिसे आकस्मिक समूह कहते हैं। इसकी मुख्य विशेषता यह है कि ऐसा समूह बहुत थोड़े समय के लिए होता है तथा इसके सदस्यों के बीच सतही की कार्यात्मक एकता पाई जाती है, परन्तु घनिष्ठ सम्बन्ध तथा रागात्मक सम्बन्ध का अभाव पाया जाता है।

6.5.2 प्रयोजनात्मक समूह का अर्थ एवं विशेषता

प्रयोजनात्मक समूह उसे कहते हैं जिसका निर्माण प्राय: किसी निश्चित उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए किया जाता है। जैसे, औद्योगिक संगठन की स्थापना आर्थिक लाभ उठाने के लिए की जाती है। ऐसा समूह अपेक्षाकृत स्थाई होता है। कभी-कभी प्रयोजनात्मक समूह का उद्देश्य स्पष्ट नहीं होता है। जैसे, परिवार एक स्थायी समूह है जिसका कोई स्पष्ट उद्देश्य नहीं दीख पड़ता है। परन्तु गंभीरता से देखने पर पता चलता है कि प्रत्येक परिवार का उद्देश्य परिवार कल्याण होता है।

6.6 गतिशील तथा स्थिर समूह

गतिशीलता के आधार पर समूह को दो भागों में विभाजित किया जा सकता है :

(क) गतिशील समूह तथा

(ख) स्थिर समूह।

6.6.1 गतिशील तथा स्थिर समूह

गतिशील समूह उसे कहते हैं जो किसी एक स्थान पर स्थिर नहीं रहता है। जैसे, नट लोगों के समूह को गतिशील समूह कहेंगे। वे लोग अपनी जीविका के अर्जन के लिए अपना निवास-स्थान बदलते रहते हैं। इस प्रकार के समूह के अपने मानक तथा मूल्य होते हैं।

6.6.2 स्थिर समूह का अर्थ एवं विशेषता

स्थिर समूह उसे कहते हैं जो प्राय: किसी निश्चित स्थान से सम्बद्ध रहता है। औद्योगिक संगठन, शैक्षिक संस्थान आदि इसके उदाहरण हैं। इस प्रकार के समूह की अपनी परम्परा होती है, इसके अपने मूल्य होते हैं। बाहरी खातरों से अधिक भय महसूस होने के कारण स्थिर समूह की अपेक्षा गतिशील समूह अधिक संगठित होता है। इसके सदस्यों का मनोबल अपेक्षाकृत अधिक ऊँचा होता है।

6.7 सदस्यता-समूह तथा संदर्भ समूह

सदस्यता के आधार पर समूह को निम्नलिखित दो भागों में विभाजित किया जा सकता है–

6.7.1 सदस्यता समूह का अर्थ एवं विशेषता

इस प्रकार के समूह का तात्पर्य ऐसे समूह से है, जिसकी सदस्यता व्यक्ति को प्राप्त होती है। चैपलिन (1975) के शब्दों में, "सदस्यता-समूह वह समूह है जिसमें व्यक्ति स्वीकृत सदस्य होता है।" जैसे, एक हिन्दू समूह में अधिकृत

सदस्यता प्राप्त है। अत: उसके लिए हिन्दू समूह एक सदस्यता समूह है। इसी प्रकार यदि किसी व्यक्ति को जनता दल या लोकदल की विधिवत् सदस्यता प्राप्त हो तो उसके लिए वह समूह सदस्यता-समूह कहलायेगा।

6.7.2 संदर्भ-समूह का अर्थ एवं विशेषता

संदर्भ समूह वह समूह है जिसका प्रभाव व्यक्ति के व्यवहार पर आवश्यक रूप से पड़ता है, चाहे व्यक्ति को उस समूह की सदस्यता प्राप्त हो अथवा नहीं। लिण्डग्रेन (1969) के अनुसार "कोई भी समूह जिसका आदर्श प्रभाव हमारे व्यवहार पर पड़ता है, संदर्भ समूह है।" चैपलिन (1975) ने और भी स्पष्ट शब्दों में कहा है कि "संदर्भ समूह का तात्पर्य किसी भी ऐसे समूह से है जिसके साथ व्यक्ति आत्मीकरण स्थापित कर लेता है (चाहे वह उसका सदस्य हो या नहीं) तथा जिसे वह उचित आचरण हेतु अथवा लक्ष्यों को विकसित करने के लिए एक मार्गदर्शक के रूप में व्यवहार करता है।"

"संदर्भ-समूह शब्द का व्यवहार सबसे पहले हाइमैन (1942) ने किया। उन्होंने बताया कि व्यक्ति अपनी सामाजिक स्थिति की तुलना अपनी पसंद के सामाजिक ढाँचा के आधार पर करता है।

संदर्भ समूह का संप्रत्यय क्रमश: व्यापक तथा परिमार्जित होता रहा है। व्यक्ति लगभग हमेशा कई प्रकार के संदर्भ समूहों से प्रभावित होता है। वे एक-दूसरे के मार्ग में हस्तक्षेप भी कर सकते हैं। संदर्भ समूह से सकारात्मक कार्य तथा नकारात्मक कार्य दोनों हो सकते हैं। जैसे- संदर्भ समूह से प्रभावित होकर व्यक्ति किसी व्यवहार को टाल सकता है और किसी व्यवहार को अपना सकता है। संदर्भ समूह के इन सभी पक्षों के सम्बन्ध में मर्टन एवं रोसी (1950), मर्टन (1957), हाईमैन एवं सिंगर (1968) आदि के अध्ययन उल्लेखनीय हैं।

केली (1982) ने संदर्भ समूह के आदर्शी कार्य तथा तुलना कार्य का उल्लेख किया। जब कोई संदर्भ समूह व्यक्ति के प्रतिमानों, मनोवृत्तियों या मूल्यों के निर्माण का स्रोत बन जाता है तो इसे आदर्शी कार्य कहते हैं। दूसरी ओर जब सह वह समूह अपने या दूसरे के सामाजिक प्रबन्ध के मूल्यांकन का आधार बन जाता है तो इसे तुलना कार्य कहते हैं। प्राय: एक ही समूह इन दोनों प्रकार के कार्यों का स्रोत बन जाता है।

6.8 समूह की संरचना

समूह-संरचना का अर्थ यह देखना है कि किसी समूह में सदस्यों की संख्या कितनी है, उन सदस्यों की व्यक्तिगत प्रभावशीलता कितनी है, उनके बीच सम्बन्ध कैसा है तथा उनके बीच संचार की व्यवस्था कैसी है। समूह की संरचना का अध्ययन आवश्यक इसलिए है कि इसका गहरा प्रभाव समूह के भिन्न-भिन्न कार्यों पर पड़ता है। समूह संरचना तथा सदस्यों के परस्पर व्यवहारों के बीच सीधा सम्बन्ध होता है। समूह संरचना की जटिलता बढ़ने से सदस्यों के व्यवहारों या समूह के कार्यों में भी आवश्यक परिवर्तन होते हैं। समूह संरचना के सम्बन्ध में निम्नलिखित बातें महत्त्वपूर्ण हैं-

6.8.1 समूह का आकार

इसका अर्थ यह है कि समूह में सदस्यों की संख्या कितनी है। जब सदस्यों की संख्या कम होती है तो इसे छोटा समूह कहते हैं। रोजेनबर्ग एवं टर्नर (1981) के अनुसार छोटा समूह का अर्थ वह समूह है जिसके सदस्यों के बीच प्रत्यक्ष रूप से पारस्परिक क्रिया संभव हो, वे एक दूसरे से बातचीत कर सकें अथवा कम-से-कम एक दूसरे को जान सकें तथा समूह के प्रति निष्ठा का भाव रख सकें। सबसे छोटा समूह वह है जिसमें केवल दो सदस्य होते हैं। पति तथा पत्नी से निर्मित परिवार इसका उदाहरण है। इसी तरह एकाकी परिवार, संयुक्त परिवार, मित्र मण्डली आदि छोटे समूह के उदाहरण हैं। दूसरी ओर जिस समूह में सदस्यों की संख्या इतनी अधिक होती है कि प्रत्यक्ष रूप से सदस्यों के बीच पारस्परिक क्रिया संभव नहीं होती है, वे एक-दूसरे को जान नहीं पाते हैं, उसे बड़ा समूह कहते हैं। कार्य-समूह, राजनैतिक दल, धार्मिक संगठन, आदि इसके उदाहरण हैं।

इस तरह हम देखते हैं कि बड़े समूह या छोटे समूह की अलग-अलग विशेषतायें हैं जिनके आधार पर दोनों एक दूसरे से भिन्न हैं।

(क) छोटे समूह में सदस्यों के बीच आमने-सामने का सम्बन्ध होता है, परन्तु बड़े समूह में यह सम्भव नहीं होता है।

(ख) छोटे समूह में सदस्यों के बीच प्रत्यक्ष पारस्परिक क्रिया होती है जबकि बड़े समूह में अप्रत्यक्ष पारस्परिक क्रिया होती है।

(ग) छोटे समूह में प्राय: सदस्यगण एक-दूसरे को जानते हैं, किन्तु बड़े समूह में यह संभव नहीं होता है।

(घ) बड़े समूह की अपेक्षा छोटे समूह के सदस्यों में अपने समूह के प्रति सदस्यता तथा निष्ठा का भाव अधिक होता है।

(ङ) छोटे समूह में बड़े समूह की अपेक्षा एकता अधिक होती है तथा आन्तरिक संघर्ष कम होता है। इन अन्तरों में होते हुए भी इन दोनों समूहों के बीच कोई निश्चित सीमा-रेखा खींचना संभव नहीं है।

6.8.2 सदस्य संघटन

इसका अर्थ यह है कि किस प्रकार के सदस्यों से समूह संरचित है। समूहों का आकार समान रहने पर भी सदस्यों के व्यक्तित्व में भिन्नता होने के कारण उनके कार्य भिन्न हो जाते हैं तथा उनका प्रभाव समूह व्यवहार पर भिन्न-भिन्न रूप से पड़ने लगता है। किसी समूह की प्रभावशीलता वास्तव में उसके सदस्यों की प्रभावशीलता पर निर्भर करती है (क्रेच आदि 1962)। यदि दो समूहों में अलग-अलग पाँच-पाँच सदस्य हों, परन्तु पहले समूह के सदस्य शिक्षित तथा ऊँचे पदों पर आसीन हों तथा दूसरे समूह के सभी या अधिकांश सदस्य अशिक्षित तथा बेरोजगार या निम्न पदों पर कार्यरत हों तथा पहला समूह अधिक प्रभावशाली होगा, जिसका कारण समूह का आकार नहीं, बल्कि संघटन होगा।

6.8.3 पद-अनुक्रम

संरचनात्मक स्थिरता के दृष्टिकोण से समूहों में भिन्नता पाई जाती है। कुछ समूह ऐसे होते हैं जिनके सदस्यों का पदानुक्रम काफी स्थिर होता है। जैसे- उद्योग, आदि औपचारिक समूहों की भूमिका तथा स्थिति परिभाषित तथा निश्चित होती है। उनके अधिकार तथा कर्त्तव्य मौखिक या लिखित नियमों एवं अधिनियमों द्वारा निर्धारित होते हैं। इनके आलोक में ही उनके व्यवहारों का निर्धारण होता है। दूसरे कुछ समूह ऐसे होते हैं जिनके सदस्यों का पद-अनुक्रम स्थिर नहीं होता है। उनकी भूमिका तथा स्थिति पूरी तरह परिभाषित तथा निर्धारित नहीं होती है। जैसे-मित्र-मण्डली, खेल-समूह, आदि अनौपचारिक समूहों के सदस्यों के व्यवहार नियमों या अधिनियमों के आलोक में सदा निर्धारित नहीं होते हैं। अत: जहाँ औपचारिक समूह के सदस्यों के व्यवहारों के निर्धारण में पदानुक्रम की प्रधानता होती है, वहाँ अनौपचारिक समूह के सदस्यों के व्यवहारों के निर्धारण में उनके व्यक्तित्व-शीलगुणों का अधिक महत्त्व होता है (क्रेच आदि, 1962)।

6.8.4 संचार-जाल

संचार-जाल के दृष्टिकोण से भी समूहों की संरचना में अन्तर पाया जाता है। संचार का अर्थ वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा सूचना प्राप्त की जाती है अथवा भेजी जाती है। संचार के भिन्न-भिन्न प्रतिरूप या ढाँचे हो सकते हैं, जैसे- क्षैतिज संचार, उदग्र संचार, मौखिक संचार, लिखित संचार, नीचे की ओर संचार, ऊपर की ओर संचार, आदि। छोटे समूह में संचार-जाल सरल होता है जबकि बड़े समूह में अप्रत्यक्ष संचार देखा जाता है। परिवार, मित्र-मंडली, आदि प्राथमिक समूहों में क्षैतिज संचार अधिक पाया जाता है जबकि कार्य समूह में उदग्र संचार अधिक देखा जाता है। इन सबका प्रभाव भिन्न-भिन्न रूपों में सदस्यों के व्यवहारों पर पड़ता है।

6.8.5 वाह्य सामाजिक संदर्भ

भिन्न-भिन्न समूहों की संरचना वाह्य संदर्भ के दृष्टिकोण से भी भिन्न-भिन्न होती है। किसी समूह की संरचना ऐसी

होती है कि समाज के दूसरे समूहों से उसका सम्बन्ध अधिक विस्तृत एवं गहरा होता है। इसके विपरीत किसी समूह का यह सम्बन्ध सीमित तथा सतही होता है। अत: किसी समूह का सम्बन्ध कितना अधिक या कम विस्तृत है, इसका प्रभाव भी सदस्यों पर पड़ता है। क्रेच आदि (1962) के अनुसार सामाजिक संदर्भ बढ़ने पर अनुपालन बढ़ता है, अर्थात् व्यक्ति समूह दबाव के सामने अधिक झुकता है।

इस प्रकार स्पष्ट है कि समूहों की संरचना में भिन्नता पाई जाती है। इस भिन्नता का गहरा प्रभाव व्यक्ति के व्यवहारों तथा समूह कार्यों पर पड़ता है। जैसे-भारत में कठोर जाति व्यवस्था के कारण सामाजिक पारस्परिक क्रियायें दूसरे देशों की तुलना में अधिक जटिल बनती जा रही हैं।

6.9 समूहों के कार्य

समूहों के कार्यों को बतलाने के पहले कह देना आवश्यक है कि किसी समूह के कार्य की सफलता या जटिलता उसकी संरचना की सरलता या जटिलता पर निर्भर करती है। यह भी उल्लेखनीय है कि भिन्न-भिन्न प्रकार के समूहों के स्वरूप की बातों को ध्यान में रखते हुए समूह के सामान्य कार्यों को निम्नलिखित भागों में विभाजित किया जा सकता है–

6.9.1 आवश्यकताओं की संतुष्टि

समूह का प्रधान कार्य अपने-अपने सदस्यों की आवश्यकताओं की संतुष्टि करना है। आवश्यकतायें दो तरह की होती हैं :

(क) प्राथमिक आवश्यकतायें तथा

(ख) द्वितीयक आवश्यकतायें।

भोजन, पानी, वस्त्र, मकान, सुरक्षा, आदि की आवश्यकताओं को प्राथमिक आवश्यकता कहते हैं। इसी प्रकार यौन आवश्यकता को भी प्राथमिक आवश्यकता कहा जाता है। इन आवश्यकताओं का तात्पर्य संबंध-आवश्यकता, स्वीकृति-आवश्यकता, प्रतिष्ठा-आवश्यकता, सम्मान आवश्यकता आदि से है। इन आवश्यकताओं की संतुष्टि प्राथमिक तथा द्वितीयक दोनों प्रकार के समूहों द्वारा होती है। भिन्न-भिन्न आवश्यकताओं पर ध्यान देता है। सत्तावादी समूह की अपेक्षा प्रजातांत्रिक समूह अपने सदस्यों की आवश्यकताओं की पूर्ति पर अधिक ध्यान देता है। लेकिन, इन दोनों प्रकार के समूहों में अधिक प्रभावशाली सदस्यों की आवश्यकताओं की पूर्ति अधिक होती है (क्रेच आदि 1962, 1982)।

6.9.2 आधिपत्य आवश्यकता की संतुष्टि

समूह के द्वारा व्यक्ति की आधिपत्य आवश्यकता की पूर्ति होती है। सभी व्यक्तियों में दूसरे पर आधिपत्य प्राप्त करने तथा श्रेष्ठ बनने की इच्छा होती है, परन्तु मात्रा का अन्तर होता है। समूह के कुछ सदस्यों में यह आवश्यकता या इच्छा अधिक तीव्र होती है और कुछ में कम तीव्र। जिस सदस्य में यह आवश्यकता अधिक तीव्र होती है वह नेता बनने का प्रयास करता है और अपने प्रयास में सफल बन जाता है तो उसकी यह आवश्यकता पूरी हो जाती है। यदि समूह का निर्माण न हो तो व्यक्ति की इस आवश्यकता की संतुष्टि नेता के रूप में नहीं हो सकेगी। यदि जनता पार्टी का निर्माण नहीं हुआ होता तो मोरारजी देसाई या श्री चरण सिंह को भारत के प्रधानमंत्री के रूप में आधिपत्य आवश्यकता की संतुष्टि नहीं होती। समूह चाहे छोटा हो या बड़ा, प्राथमिक हो या द्वितीयक; सत्तावादी हो या प्रजातांत्रिक, सबों के द्वारा कुछ सदस्यों की आधिपत्य आवश्यकता की पूर्ति नेतृत्व की औपचारिक मान्यता के अभाव में भी होती है (क्रेच आदि 1962, 1982)।

6.9.3 संबंधन-आवश्यकता की संतुष्टि

समूह अपने सदस्यों की सम्बन्धन या सम्बद्धता आवश्यकता की संतुष्टि करता है। सामाजिक प्राणी होने के नाते मनुष्य समाज या समूह में रहना चाहता है। यह एक सार्वजनिक प्रेरक है जो प्रत्येक व्यक्ति में रहता है, चाहे इसकी मात्रा

अधिक हो या कम। लेकिन, व्यक्ति समूह में क्यों रहना चाहता है, यह एक जटिल प्रश्न है। कुछ मनोवैज्ञानिकों के अनुसार व्यक्ति अपनी प्राथमिक तथा/अथवा द्वितीयक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए किसी समूह में रहने के लिए इच्छा करता है। लेकिन, शैश्टर (1959) के अनुसार इसका कारण चिन्ता है। उन्होंने अपने अध्ययन के आधार पर बताया कि कम चिन्तित व्यक्ति की तुलना में अधिक चिन्तित व्यक्ति में सम्बद्धता आवश्यकता अधिक पाई जाती है। लैम्बर्ट आदि (1960) के अनुसार व्यक्ति अपनी प्रतिष्ठा एवं अपने सम्मान की आवश्यकता की संतुष्टि के लिए किसी समूह से सम्बद्ध रहना ही सुखद बन जाता है। क्रेच आदि (1962) के अनुसार अन्त में समूह से सम्बद्ध रहना ही सुखद बन जाता है। आरम्भ में समूह-सम्बद्धता साधन के रूप में कार्य करती है और अंत में स्वयं साध्य बन जाती है। इस प्रकार समूह अपने सदस्यों की इस महत्त्वपूर्ण आवश्यकता की संतुष्टि करता है।

6.9.4 नई आवश्यकताओं का निर्माण

मनुष्य की आवश्यकतायें स्थिर नहीं होती हैं, बल्कि व्यक्ति या वातावरण में परिवर्तन के साथ बदलती तथा विकसित होती रहती हैं। समूह सदस्यता प्राप्त हो जाने के बाद व्यक्ति को नये अनुभव प्राप्त होते हैं जिनके कारण उनमें नई आवश्यकताएँ विकसित होती हैं। समूह सदस्यता प्राप्त हो जाने के बाद जिन नई आवश्यकताओं का विकास होता है, उनमें समूह के अस्तित्व को कायम रखने की आवश्यकता सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण है। यह आवश्यकता मुख्य रूप से प्रभावशाली सदस्यों में अधिक प्रबल दीख पड़ती है। कभी-कभी यह आवश्यकता इतनी प्रबल बन जाती है कि सदस्यों की दूसरी आवश्यकतायें अपेक्षित होने लगती हैं। वे हर कीमत पर अपने समूह को कायम रखने का प्रयास करने लगते हैं। कभी-कभी इस प्रयास का परिणाम उलटा होता है। अधिकांश सदस्यों की इन आवश्यकताओं की समूह द्वारा संतुष्टि नहीं होने पर समूह में विघटन शुरू हो जाता है (क्रेच आदि 1962, 1982)।

6.9.5 समूह-लक्ष्य की प्राप्ति

समूह-लक्ष्य को प्राप्त करना, प्रत्येक समूह का एक महत्त्वपूर्ण कार्य है। समूह-लक्ष्य का अर्थ वह लक्ष्य है जिसमें सभी सदस्यों की रुचि होती है। उनकी व्यक्तिगत आवश्यकताओं में भिन्नता होते हुए भी वे इस लक्ष्य को पूरा करने का प्रयास सामूहिक रूप से करते हैं। परिवार एक प्राथमिक समूह है जिसका सामान्य लक्ष्य परिवार-कल्याण या परिवार उन्नति है। इसी तरह किसी भी द्वितीयक समूह का निर्माण एक सामान्य लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए किया जाता है। राजनीतिक समूह, धार्मिक समूह, सामाजिक संगठन, शैक्षिक संस्थान, सबों के निर्माण के पीछे कोई-न-कोई सामान्य लक्ष्य होता है, जिसको प्राप्त करने का काम समूह करता है। इस सम्बन्ध में स्मरण रखना चाहिए कि व्यक्तिगत आवश्यकता तथा समूह-लक्ष्य के बीच गहरा सम्बन्ध है। अत: सदस्यों के लक्ष्यों एवं उनकी आवश्यकताओं में परिवर्तन होने से समूह लक्ष्य में भी परिवर्तन लाना पड़ता है। यदि ऐसा न हो तो समूह का अस्तित्व ही खतरे में पड़ जायेगा।

6.9.6 समूह विचारधारा का सम्पोषण

प्रत्येक समूह के अपने मानदण्ड, मूल्य, विश्वास तथा रीति-रिवाज होते हैं,जिन्हें सिद्धान्त या विचारधारा कहते हैं। इसका प्रभाव समूह के सदस्यों पर समान रूप से पड़ता है। इसलिए उनकी मनोवृत्ति, विचार, व्यवहार आदि में बहुत समानता पाई जाती है। प्रत्येक समूह अपने सिद्धांत की सुरक्षा तथा इसके सम्पोषण का प्रयास एक सांस्कृतिक सम्पत्ति के रूप में करता है। समूह के इसी कार्य के कारण किसी समूह का केन्द्रीय स्वरूप कायम रह पाता है। जैसे- अनेक बाहरी आक्रमणों के होते हुए भी भारतीय हिन्दू समूह का केन्द्रीय स्वरूप आज भी कायम है।

6.9.7 अनेक समूहों की सदस्यता

समूह अप्रत्यक्ष रूप से अपने सदस्यों को दूसरे समूह या समूहों के सदस्य बनने के लिए मजबूर करता है। इसके तीन

कारण हैं :

(क) समूह अपने सदस्यों की सभी आवश्यकताओं को पूरा नहीं कर पाता है।

(ख) समूह का कार्यक्षेत्र धीरे-धीरे विशिष्ट होता जाता है और सदस्यों की आवश्यकतायें बढ़ती जाती हैं।

(ग) सदस्यों की बदलती हुई आवश्यताओं के अनुकूल समूह अपने-आप में परिवर्तन नहीं ला पाता है। इन तीनों कारणों का फल यह होता है कि समूह के सदस्य मजबूरन दूसरे ऐसे समूहों के भी सदस्य बन जाते हैं, जिनसे उनकी शेष आवश्यकताओं की पूर्ति होती है या होने की आशा रहती है। क्रेच आदि (1962) के अनुसार समूह का यह कार्य प्रभावशाली सदस्य या नेता की तुलना में साधारण सदस्यों के लिए अधिक महत्त्वपूर्ण हैं।

6.9.8 समाजीकरण का साधन

व्यक्ति के समाजीकरण में समूह एक महत्त्वपूर्ण साधन के रूप में कार्य करता है। समाजीकरण वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा व्यक्ति अपने समूह के प्रतिमान, मूल्य, रीति-रिवाज, आदि के अनुसार व्यवहार करना सीखता है। इसमें प्राथमिक तथा द्वितीयक दोनों समूहों का हाथ होता है। लेकिन, प्राथमिक समूह का हाथ अधिक होता है। परिवार एक प्राथमिक समूह है जिसका प्रभाव बच्चों के समाजीकरण पर सबसे अधिक पड़ता है (सकेर्ड और बैंकमैन, 1974)। इसके अलावा धार्मिक संगठन, सामाजिक संस्थान, राजनीतिक दल आदि द्वितीयक समूहों का भी प्रभाव समाजीकरण पर पड़ता है।

इस प्रकार हमने देखा कि समूह के उपर्युक्त कई कार्य हैं। प्रत्येक कार्य अपने-आप में महत्त्वपूर्ण हैं। फिर भी परिस्थितियों में परिवर्तन होने के कारण उनके महत्त्व में कमी-बेशी हो सकती है। एक परिस्थिति में जो कार्य अधिक महत्त्वपूर्ण होता है वह दूसरी परिस्थिति में कम महत्त्वपूर्ण हो सकता है। इसी प्रकार जो कार्य एक परिस्थिति में कम महत्त्वपूर्ण है, वह दूसरी परिस्थिति में अधिक महत्त्वपूर्ण हो जा सकता है।

6.10 सारांश

(1) समूह कुछ व्यक्तियों की सामाजिक इकाई है जिनके सदस्यों के बीच एक कार्यात्मक संबंध होता है और जिनका एक सामूहिक लक्ष्य होता है जिसे प्राप्त करने के लिए वे सक्रिय रहते हैं।

(2) प्राथमिक समूह ऐसे समूह को कहते हैं जिसमें पारस्परिक संबंध प्रतिदिन घटित होता है। इसका आकार छोटा है। इसमें स्थयित्व, व्यक्तिक आवेष्टन, घनिष्ठ एवं स्वाभाविक पारस्परिक संबंध, सकारात्मक मनोवृत्ति, उच्च मनोबल की विशेषता देखी जाती है। दूसरी ओर द्वितीयक समूह का तात्पर्य ऐसे समूह से है जिसमें सदस्यों के बीच औपचारिक संबंध अधिक होता है। इसकी कई विशेषताएँ हैं– इसका आकार बड़ा होता है, इसमें भाईचारा, सहानुभूति तथा सहयोग के भाव की कमी होती है। यहाँ व्यक्तियों के बीच मनोबल नीचा होता है।

(3) इस प्रकार प्राथमिक तथा द्वितीयक समूह में कई स्पष्ट अन्तर हैं– प्राथमिक समूह का आकार अपेक्षाकृत छोटा होता है जबकि द्वितीयक समूह बड़ा होता है, प्राथमिक समूह में अनौपचारिक संबंध होता है जबकि द्वितीयक समूह में औपचारिक संबंध होता है। प्राथमिक समूह अपेक्षाकृत टिकाऊ एवं स्थायी होता है जिसमें ऊँचा मनोबल तथा समूह प्रभावशीलता देखी जाती है। जबकि द्वितीयक समूह में इसका अभाव देखा जाता है।

(4) औपचारिक समूह उस समूह को कहते हैं जिसका निर्माण किसी लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए होता है जो कुछ नियम एवं सिद्धान्त पर आधारित होते हैं। इस समूह की विशेषता है कि इनके सदस्यों के बीच औपचारिक संबंध होते हैं जिसमें भाईचारे एवं सहानुभूति का अभाव होता है। दूसरी ओर अनौपचारिक समूह का निर्माण व्यक्तियों के सहज एवं स्वाभाविक सम्पर्कों के आधार पर होता है जिसमें कोई नियम या कानून

की आवश्यकता नहीं होती है। इस समूह के सदस्यों के बीच घनिष्ठ सम्बन्ध होते हैं और भाईचारे तथा सहानुभूति का भाव देखा जाता है।

(5) रागात्मक सम्बन्ध के आधार पर समूह के दो प्रकार हैं :
अन्त:समूह ''हम समूह'' को कहते हैं जिसमें सदस्यों का समूह के प्रति निष्ठा का भाव होता है, वे समूह के मूल्यों तथा मानकों को अधिक मान्यता देते हैं। दूसरी ओर वाह्य समूह वे समूह हैं जिसमें निष्ठा, आत्मीकरण, अहंशक्ति तथा सहानुभूति का अभाव होता है।

(6) प्रयोजन या उद्देश्य के आधार पर समूह के दो प्रकार हैं जिसे आकस्मिक तथा प्रयोजनात्मक समूह कहते हैं। आकस्मिक समूह का अर्थ उस समूह से है जो बिना किसी प्रयोजन के बनाया जाता है। ऐसा समूह थोड़े समय के लिए होता है जिनके सदस्यों के बीच सतही कार्यात्मक एकता पायी जाती है। दूसरी ओर प्रयोजनात्मक समूह का निर्माण किसी निश्चित उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए किया जाता है। यह अपेक्षाकृत अधिक स्थायी है।

(7) गतिशीलता के आधार पर समूह को दो भागों में विभाजित किया गया है जिसे गतिशील समूह तथा स्थिर समूह कहते हैं। गतिशील समूह के अपने मानक एवं मूल्य होते हैं। यह एक स्थान पर स्थिर नहीं होता जबकि स्थिर समूह का सम्बन्ध निश्चित स्थान से होता है। इस समूह की अपनी परम्परा तथा मूल्य होते हैं।

(8) इसी प्रकार सदस्यता के आधार पर समूह को सदस्यता समूह जो सन्दर्भ समूह में व्यक्त किया गया है। सदस्यता समूह का तात्पर्य ऐसे समूह से है, जिसकी सदस्यता व्यक्ति को प्राप्त होती है। दूसरी ओर सन्दर्भ समूह वह समूह है जिसका प्रभाव व्यक्ति के व्यवहार पर आवश्यक रूप से पड़ता है, चाहे व्यक्ति को उस समूह की सदस्यता प्राप्त हो अथवा नहीं।

(9) समूह की संरचना का आकार, सदस्य संगठन, पद-अनुक्रम, संचार-जाल, वाह्य सामाजिक सन्दर्भ इत्यादि स्पष्ट रूप से प्रभावित करता है। यह बात उचित है कि समूह के कार्य की सफलता उसकी संरचना का ही परिणाम होती है।

(10) समूह के स्वरूप में अन्तर होने के कारण उनके कार्यों में भी अन्तर देखा जाता हो फिर भी समूह के निम्नलिखित महत्त्वपूर्ण कार्य हैं– आवश्यकताओं की संतुष्टि, आधिपत्य, आवश्यकता की संतुष्टि, सम्बन्धन आवश्यकता की संतुष्टि, नयी आवश्यकताओं का निर्माण, समूह लक्ष्य की प्राप्ति, समूह विचारधारा का सम्पोषण, समाजीकरण का साधन एवं अन्यान्य समूहों की सदस्यता।

6.11 पाठ में प्रयुक्त शब्द कुंजी

समूह,	समूह व्यवहार,	संग्रह,	संप्रत्यय, भीड़,
पूर्णयोग,	संकलन,	कार्यात्मक संबंध,	स्थायीकरण,
सामूहिक लक्ष्य,	भाईचारा,	एकात्म निष्ठा,	प्राथमिक समूह,
द्वितीयक समूह,	बारम्बारता,	वैयक्तिक आवेष्टन,	अहम् आवेष्टन,
कृत्रिमता,	जागरूकता,	समूह समग्रता,	वैयक्तिक मूल्य तंत्र,
औपचारिक समूह,	अनौपचारिक समूह,	अन्त:समूह,	वाह्य समूह,
मै का भाव,	''हम का भाव'',	आकस्मिक समूह,	प्रयोगनात्मक समूह,

रागात्मक, गतिशील समूह, स्थिर समूह, सदस्यता समूह, संदर्भ समूह, आत्म मूल्यांकन, पर मूल्यांकन, संचार जाल, सामाजिक सन्दर्भ, क्षैतिज संचार, उदग्र संचार, मौखिक संचार, लिखित संचार, आधिपत्य आवश्यकता, संबंधन आवश्यकता, समूह लक्ष्य, परिवार कल्याण, समूह विचारधारा सम्पोषण।

6.12 अभ्यास के प्रश्न

(क) लघु उत्तरीय प्रश्न

1. समूह से आप क्या समझते हैं? समझाएं।

उत्तर : उत्तर के लिए 6.1 देखें।

2. प्राथमिक समूह से क्या समझते हैं? इसकी विशेषताओं का वर्णन करें।

उत्तर : उत्तर के लिए 6.2.1, 6.2.2 देखें।

3. द्वितीयक समूह की परिभाषा दें तथा इसकी विशेषता बताएँ।

उत्तर : उत्तर के लिए 6.2.3, 6.2.4 देखें।

4. प्राथमिक तथा द्वितीयक समूह में अन्तर बताएँ।

उत्तर : उत्तर के लिए 6.2.5 देखें।

5. औपचारिक तथा अनौपचारिक समूह के अर्थ को समझाएँ तथा इनके बीच के अन्तर को स्पष्ट करें।

उत्तर : उत्तर के लिए 6.3.0 से लेकर 6.3.3 तक देखें।

6. अन्त:समूह तथा वाह्य समूह के बीच अन्तर स्पष्ट करें।

उत्तर : उत्तर के लिए 6.4 से लेकर 6.4.2 तक देखें।

7. आकस्मिक तथा प्रयोगानात्मक समूह के बीच अन्तर स्पष्ट करें।

उत्तर : उत्तर के लिए 6.5 से लेकर 6.5.2 तक देखें।

8. गतिशील तथा स्थिर समूह के बीच अन्तर स्पष्ट करें।

उत्तर : उत्तर के लिए 6.6 से लेकर 6.6.2 तक देखें।

9. सदस्यता समूह तथा संदर्भ समूह के बीच अन्तर स्पष्ट करें।

उत्तर : उत्तर के लिए 6.7 से लेकर 6.7.2 तक देखें।

(ख) दीर्घ उत्तरी प्रश्न

1. समूह से आप क्या समझते हैं? इनके विभिन्न प्रकारों का वर्णन करें।

उत्तर : उत्तर के लिए 6.1, 6.2, 6.3, 6.4, 6.5, 6.6, 6.7 तक देखें।

2. समूह का निर्माण किन-किन बातों पर निर्भर करता है? वर्णन करें। अथवा, समूह संरचना किस प्रकार होती है? वर्णन करें।

उत्तर : उत्तर के लिए 6.8 से लेकर 6.8.4 तक देखें।

3. समूह के कौन-कौन से कार्य हैं? वर्णन करें।

उत्तर : उत्तर के लिए 6.9 से लेकर 6.9.8 तक देखें।

6.13 अन्य अध्ययन सामग्री

1.	तोमर	:	आधुनिक समाज मनोविज्ञान
2.	एस० एस० माथुर	:	समाज मनोविज्ञान
3.	डा० ए० के० सिंह	:	समाज मनोविज्ञान की रूप-रेखा
4.	श्रीवास्तव, पाण्डे एवं सिंह	:	आधुनिक समाज मनोविज्ञान

■

नेतृत्व

पाठ संरचना

7.0 पाठ के उद्देश्य

7.1 नेता की परिभाषा एवं स्वरूप

7.2 नेता के व्यक्तिगत शीलगुण या विशेषताएँ

- 7.2.1 शारीरिक शीलगुण
- 7.2.2 व्यक्तिगत शीलगुण

7.3 नेता का उद्‌भव या आविर्भाव

- 7.3.1 व्यक्तिगत कारक या महान मानव सिद्धांत या शीलगुण सिद्धांत
- 7.3.2 परिस्थिति कारक या समय सिद्धांत या परिस्थिति सिद्धान्त

7.4 नेतृत्व के प्रकार

- 7.4.1 कौनवे का वर्गीकरण
- 7.4.2 बार्टलेट का वर्गीकरण
- 7.4.3 किम्बल यंग का वर्गीकरण
- 7.4.4 सारजेन्ट का वर्गीकरण
- 7.4.5 लिपोट का वर्गीकरण

7.5 सत्तावादी तथा प्रजातांत्रिक नेतृत्व में अन्तर

7.6 नेता के कार्य

- 7.6.1 कार्यपालक के रूप में नेता
- 7.6.2 योजना निर्माण के रूप में नेता
- 7.6.3 नीति निर्माण के रूप में नेता
- 7.6.4 विशेषज्ञ के रूप में नेता

7.6.5 समूह प्रतिनिधि के रूप में नेता

7.6.6 आन्तरिक नियंत्रक के रूप में नेता

7.6.7 पुरस्कार एवं दण्ड के प्रबंधक के रूप में नेता

7.6.8 पंच एवं मध्यस्थ के रूप में नेता

7.6.9 आदर्श के रूप में नेता

7.6.10 समूह के प्रतीक के रूप में नेता

7.6.11 व्यक्तित्व उत्तरदायित्व के रूप में नेता

7.6.12 सिद्धांतवादी के रूप में नेता

7.6.13 पिता तुल्य के रूप में नेता

7.6.14 बलि के बकरे के रूप में नेता

7.6.15 समन्वयक के रूप में नेता

7.7 नेतृत्व प्रशिक्षण

7.8 नेतृत्व प्रशिक्षण की आवश्यकता

7.9 नेतृत्व प्रशिक्षण की प्रविधियाँ

7.10 सारांश

7.11 पाठ में प्रयुक्त शब्द कुंजी

7.12 अभ्यास के लिए प्रश्न

(क) लघु उत्तरीय प्रश्न

(ख) दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

7.13 अन्य उपयोगी पठन सामग्री

7.0 उद्देश्य

इस पाठ का उद्देश्य पाठकों को नेतृत्व के विभिन्न पक्षों के सम्बन्ध में आवश्यक जानकारी देनी है। इस पाठ का एक उद्देश्य यह बतलाना है कि नेतृत्व किसे कहते हैं, तथा इसकी क्या विशेषतायें हैं। दूसरा उद्देश्य यह बतलाना है कि नेतृत्व के कौन-कौन से प्रकार हैं तथा सत्तावादी नेतृत्व एक प्रजातांत्रिक नेतृत्व के बीच क्या अन्तर है। तीसरा उद्देश्य नेतृत्व के उदभव तथा विकास पर प्रकाश डालना है ताकि पाठकों को नेतृत्व विकास की जानकारी हो सके। चौथा उद्देश्य नेतृत्व प्रशिक्षण तथा इसकी विधियों से पाठकों को अवगत कराया जाये। अन्त में लघु उत्तरीय प्रश्न तथा दीर्घ उत्तरीय प्रश्न के

माध्यम से पाठकों की उपलब्धियों की जाँच करनी है।

7.1 परिभाषा तथा स्वरूप

नेतृत्व की परिभाषा तथा इसके स्वरूप के सम्बन्ध में मनोवैज्ञानिकों के बीच सहमति नहीं है। भिन्न-भिन्न मनोवैज्ञानिकों ने नेतृत्व की परिभाषा भिन्न-भिन्न दृष्टिकोणों से दी है। नेतृत्व की परिभाषाओं को निम्नलिखित भागों में विभाजित किया जा सकता है।

7.1.1 व्यक्तिगत विशेषताओं पर आधारित परिभाषायें

इस वर्ग की परिभाषाओं के अनुसार नेतृत्व का तात्पर्य व्यक्ति की मौलिक योग्यता से है, जिसके द्वारा वह दूसरों के विचारों, मनोवृत्तियों तथा व्यवहारों को बदलने तथा बनाने में सफल होता है। होज एवं जौनसन (1970) ने इसी अर्थ में नेतृत्व की परिभाषा दी है। द्विवेदी (1979) ने भी इस विचार का समर्थन किया है। लेकिन, इस वर्ग की परिभाषा नेतृत्व के स्वरूप को पूरी तरह स्पष्ट करने में सफल नहीं है। कारण, इन परिभाषाओं में नेतृत्व के केवल एक संघटक अर्थात् व्यक्ति (नेता) पर बल दिया गया है तथा अन्य संघटकों अर्थात् समूह तथा प्रभावशीलता की उपेक्षा की गयी है।

7.1.2 समूह-विशेषताओं पर आधारित परिभाषायें

इस वर्ग की परिभाषाओं के अनुसार नेतृत्व वह समूह प्रक्रिया है जिसके द्वारा किसी सदस्य (नेता) को समूह में केन्द्रीय स्थान प्राप्त होता है। ब्लैकमार (1911) ने इसी अर्थ में नेतृत्व को परिभाषित किया है और कहा है कि समूह के अन्य सभी सदस्यों में एक सदस्य द्वारा प्रतिनिधित्व को नेतृत्व कहते हैं। क्रेच तथा क्रचफिल्ड (1948) ने भी कहा है कि समूह में अपनी विशिष्ट स्थिति के कारण नेता अपने समूह को नियंत्रित करने, समूह के लक्ष्यों को प्राप्त करने तथा सदस्यों को निर्देशन देने में सक्षम होता है। शेरिफ (1956) के शब्दों में "नेता वह है जो समूह के स्थिति-सम्बन्धों में सबसे ऊपर होता है।" लेकिन, इस वर्ग की परिभाषायें भी केवल आंशिक रूप में सफल हैं। कारण, इन परिभाषाओं में समूह को प्रधान माना गया है तथा व्यक्ति (नेता) तथा इसकी प्रभावशीलता को गौण माना गया है।

7.1.3 प्रभावशाली व्यवहार पर आधारित परिभाषायें

इस वर्ग परिभाषाओं के अनुसार नेतृत्व वह प्रक्रिया है, जिसके द्वारा एक व्यक्ति अपने व्यवहार से समूह के दूसरे व्यक्तियों (अनुयायियों) के व्यवहारों को प्रभावित करता है। हेमफिल (1949) ने इसी अर्थ में नेतृत्व की परिभाषा दी है और कहा है कि नेतृत्व का अर्थ वह व्यवहार है, जिसके फलस्वरूप समूह के अन्य सदस्य भी एक निर्धारित दिशा में व्यवहार करने के लिए उत्प्रेरित होते हैं। द्विवेदी (1979) ने कहा है "नेतृत्व का अर्थ दूसरे व्यक्तियों को प्रभावित करने की वह प्रक्रिया है, जिसके द्वारा उन्हें कुछ निश्चित लक्ष्यों की ओर संचालित किया जाता है तथा उन लक्ष्यों को पूरा किया जाता है।" लेकिन, इस वर्ग की परिभाषा भी केवल आंशिक रूप में ही सफल है। कारण, यहाँ केवल नेता को प्रधान माना गया है। इसी प्रकार रेबर (1987) ने नेतृत्व की परिभाषा देते हुए कहा कि "नेता वह व्यक्ति है जो समूह के अन्तर्गत आधिपत्य, अधिकार या प्रभाव रखता हो।"

7.1.4 अन्तर्वैयक्तिक प्रभाव पर आधारित परिभाषायें

इस वर्ग की परिभाषाओं के अनुसार एक व्यक्ति (नेता) तथा अन्य व्यक्तियों (अनुयायियों) के बीच अन्तर्वैयक्तिक प्रभाव को नेतृत्व कहते हैं। टैनेनबौम आदि (1959) ने इसी अर्थ में नेतृत्व की परिभाषा दी है और कहा है कि नेतृत्व वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा नेता तथा अनुयायी एक दूसरे को प्रभावित करके विशिष्ट लक्ष्यों को प्राप्त करते हैं। क्रेच आदि (1962, 1982) ने भी इसी अर्थ में नेतृत्व की परिभाषा दी है। उन्होंने भी कहा है कि "नेता समूह के वे सदस्य हैं, जो समूह क्रियाओं को प्रभावित करते हैं।"

उपर्युक्त चार वर्गों की परिभाषाओं में चौथे वर्ग की परिभाषा अधिक संतोषप्रद तथा समग्र है। क्रेच आदि ने नेता की उक्त परिभाषा के सम्बन्ध में तीन बातों का उल्लेख किया है :

(क) नेता की एक आवश्यक शर्त यह है कि वह अपने व्यवहार से दूसरे को प्रभावित करे। इस अर्थ में समूह का प्रत्येक सदस्य नेता है। कारण, सभी सदस्य एक-दूसरे को अपने व्यवहारों से प्रभावित करते हैं, अन्तर केवल प्रभाव की मात्रा में होता है। एक व्यक्ति जो अधिक प्रभाव प्राप्त होने के कारण आज समूह का नेता है, कल प्रभाव घट जाने पर अनुयायी बन सकता है और दूसरा व्यक्ति जो कम प्रभाव प्राप्त होने के कारण आज अनुयायी है, कल प्रभाव बढ़ जाने पर नेता बन सकता है।

(ख) नेतृत्व-व्यवहार वास्तव में अन्तर्वैयक्तिक क्रिया-प्रतिक्रिया के समान है। कारण, एक ओर नेता अपने अनुयायियों पर प्रभाव डालता है और दूसरी ओर अनुयायी अपने नेता पर प्रभाव डालते हैं। अन्तर केवल इतना है कि नेता अधिक प्रभाव डालता है और अनुयायी अपेक्षाकृत कम प्रभाव डालते हैं। इसी कारण नेतृत्व को नेता अनुयायियों के बीच अन्तर्वैयक्तिक प्रभाव की संज्ञा दी जाती है।

(ग) नेता के लिए एक निश्चित मात्रा में प्रभाव का होना आवश्यक है। दूसरे शब्दों में नेता के लिए जरूरी है कि वह दूसरे सदस्यों पर पर्याप्त प्रभाव डाल सके। इस दृष्टिकोण से नेता तथा औपचारिक प्रधान में अन्तर है। नेता का पर्याप्त प्रभाव अनुयायियों पर होता है, किन्तु किसी कार्यालय के प्रधान या पदाधिकारी का प्रभाव अपने अधीनस्थ कर्मचारियों पर नहीं भी हो सकता है। अतः उस प्रधान या पदाधिकारी को नेता नहीं कहेंगे। इस दृष्टिकोण से भी औपचारिक नेता वास्तविक नेता नहीं है।

स्पष्ट है कि क्रेच आदि की परिभाषा नेतृत्व के स्वरूप को स्पष्ट करने में अधिक सफल है। वरशेल एवं कूपर (1979) ने भी इसका समर्थन किया है और कहा है कि "नेता वह व्यक्ति है जो समूह-क्रिया की दिशा को प्रभावित करने हेतु अधिकार का उपयोग करता है।"

7.2 नेता के व्यक्तित्व-शीलगुण या विशेषताएँ

नेतृत्व के सम्बन्ध में समस्या यह है कि क्या नेता में कुछ विशिष्ट शीलगुण पाये जाते हैं? इस संदर्भ में किये गये अध्ययनों से पता चलता है कि समान परिस्थिति होने पर कुछ विशेष शीलगुणों या विशेषताओं वाले सदस्य को नेता के रूप में उभरने की अधिक संभावना होती है। इसी तरह सफल नेताओं के सम्बन्ध में किये गये अध्ययनों से भी कुछ निश्चित शीलगुणों का उल्लेख मिलता है। हम यहाँ मुख्य शीलगुणों या विशेषताओं का उल्लेख करना चाहेंगे।

7.2.1 शारीरिक शीलगुण

टरमन (1904) के अनुसार आदिम लोग शारीरिक आकार, शक्ति या आयु के आधार पर अपना नेता चुना करते थे। कुछ आदिवासियों में ऐसे व्यक्ति को नेता बनाया जाता था जो सबसे अधिक भारी शहतीर उठाकर सबसे अधिक दूर तक ढोने में सफल होता था। भारतीय संस्कृति में भी प्रायः ऐसे व्यक्ति को नेता बनाया जाता है जो अपेक्षाकृत लम्बा, भारी, स्वस्थकर तथा सक्रिय होता है और जिसकी आयु अपेक्षाकृत अधिक होती है। फुटबॉल टीम, शिकारी दल, आदि समूहों के नेता के लिए इस प्रकार के शारीरिक शीलगुणों का होना संगत है। परन्तु वाद-विवाद टीम, धार्मिक समूह, राजनीतिक समूह, आदि के नेता के लिए ऐसे शीलगुणों का होना संगत नहीं है। गाँधी, नेपोलियन तथा हिटलर अपने अधिकांश अनुयायियों की तुलना में शारीरिक स्तर पर अधिक मजबूत, लम्बे या भारी नहीं थे। ब्राउन (1977) के अनुसार नेतृत्व के लिए शारीरिक आकार, ऊँचाई तथा वजन की अपेक्षा शारीरिक संहनशक्ति तथा कार्य शक्ति अधिक महत्त्वपूर्ण शीलगुण हैं।

7.2.2 व्यक्तित्व शीलगुण

अध्ययनों से पता चलता है कि नेता में कई प्रकार के व्यक्तित्व शीलगुण पाये जाते हैं। इनमें निम्नलिखित महत्त्वपूर्ण हैं :

(1) **बुद्धि :** अध्ययनों से पता लगता है कि अधिकांश समूहों में नेता अपने अनुयायियों की अपेक्षा अधिक बुद्धिमान होते हैं (गिब, 1969; मान, 1959; स्टागडिल, 1948)। लेकिन, नेतृत्व तथा बुद्धि के बीच अधिक उच्च सहसम्बन्ध नहीं पाया जाता है। मान (1959) ने इन दोनों चरों के बीच केवल .25 सहसम्बन्ध पाया। कुछ अध्ययनों (जैसे- लोरेट एवं विलियम, 1974) में इन दोनों चरों के बीच कोई सार्थक सम्बन्ध नहीं पाया गया। फिडलर (1986) के अनुसार बुद्धि तथा नेतृत्व के बीच गहरा सहसम्बन्ध होता है।

(2) **शब्दाडम्बर :** नेता के लिए शब्दाडम्बर एक आवश्यक शीलगुण है। कई अध्ययनों से इस विचार का समर्थन होता है। (रिकने, 1958; बास, 1959; मैकग्राथ एवं जूलियन, 1963)। गिन्टर एवं लिन्डसकोल्ड (1975) ने अपने अध्ययन में देखा कि बातचीत की मात्रा का प्रभाव विशेषज्ञ पर नहीं पड़ा जबकि अविशेषज्ञ पर सार्थक प्रभाव पड़ा। जिन अविशेषज्ञों ने अधिक बातचीत की उन्हें नेता के रूप में मनोनीत किया गया और जिन अविशेषज्ञों ने बहुत थोड़ी बातचीत की, उन्हें नेता मनोनीत नहीं किया गया। सोनेन्टीनों तथा बुटिलियर (1975) ने अपने अध्ययन में पाया कि समूह का जो व्यक्ति अधिक बोलता है उसके नेता बनने की संभावना अधिक होती है, चाहे वह कुछ भी बोले।

(3) **बहिर्मुखता :** विश्वास किया जाता है कि नेता में बहिर्मुखता का शीलगुण पाया जाता है। अन्तर्मुखी व्यक्ति की अपेक्षा बहिर्मुखी व्यक्ति के नेता होने की संभावना अधिक होती है। कारण, ऐसा व्यक्ति अधिक बोलता है, दूसरों से मिलता-जुलता है तथा लोगों को संगठित करने में सफल होता है। मान (1959) के अध्ययन से इस विचार का समर्थन होता है। लेकिन, सभी प्रकार के समूहों के नेतृत्व पर यह बात आवश्यक रूप से लागू नहीं होती है।

(4) **आत्म-विश्वास :** नेता में आत्म-विश्वास का गुण पाया जाता है। ब्राउन (1964) तथा हैरेल (1969) के अध्ययनों से प्रमाणित होता है कि सफल नेतृत्व के लिए नेता में आत्म-विश्वास का होना आवश्यक है। नेतृत्व के सभी प्रकारों में एक निश्चित मात्रा में इस गुण का उपस्थित रहना आवश्यक है।

(5) **सत्तावादिता :** सामान्यत: विश्वास किया जाता है कि नेता में सत्तावादिता तथा नेतृत्व के बीच नकारात्मक सहसम्बन्ध होता है।

(6) **प्रभुता एवं आत्मसंस्थापन :** नेता के लिए प्रभुता या प्रभुत्व एक आवश्यक गुण है। व्यक्ति अपना प्रभुत्व आवश्यक संतुष्टि हेतु नेता बनने का प्रयास करता है। हैरेल (1969) ने अपने अध्ययन में पाया कि अनुयायियों की अपेक्षा नेता में प्रभुता का शीलगुण अधिक सबल था। माइनर (1968) ने अपने अध्ययन के आलोक में निष्कर्ष निकाला कि नेता के लिए प्रभुता तथा आत्म-संस्थापन के शीलगुण आवश्यक हैं। गिब (1969) के अनुसार नेता में आर्थिक आवश्यकता के साथ-साथ प्रभुत्व आवश्यकता अधिक सबल होती है। सियर्स आदि (1991) के अनुसार नेता में उच्च अभिलाषा एवं उपलब्धि का गुण पाया जाता है।

(7) **संवेगात्मक स्थिरता तथा अभियोजन :** नेता के लिए यह आवश्यक है कि उसमें संवेगात्मक स्थिरता तथा अभियोजन की योग्यता हो। एक सफल नेता अपने संवेगों पर नियंत्रण रखता है तथा आवश्यकता अनुसार अभियोजन स्थापित करने हेतु अपने विचारों तथा व्यवहारों में लचीलापन लाता है। लेकिन, कुछ अध्ययनों में यह भी देखा गया है कि युद्धकारी, आक्रमणशील तथा हिंसक व्यक्ति को नेता मनोनीत किया गया है।

(8) **परानुभूति :** अध्ययनों तथा दैनिक जीवन के निरीक्षणों से पता चलता है कि नेता के लिए परानुभूति योग्यता भी एक अपेक्षित गुण है। एक सफल नेता अपने अनुयायियों की आवश्यकताओं तथा कठिनाइयों के प्रति संवेदनशील होता है। यह गुण प्रजातांत्रिक नेता के लिए और भी अधिक आवश्यक है। स्टोगडिल (1974) के अध्ययन से प्रमाणित होता

है कि अनुयायियों की अपेक्षा नेता में सामूहिक समस्याओं के प्रति संवेदनशीलता अधिक पाई जाती है।

(9) **चमत्कार :** कुछ नेताओं में कुछ विशेष प्रकार के चुम्बकीय आकर्षण होता है। यह गुण केनेडी, हिटलर, श्रीमती इन्दिरा गाँधी आदि नेताओं में देखा गया। मैक्स वेबर (1958) के अनुसार यह एक आलौकिक गुण, जिसका आनुभाविक अध्ययन असंभव है। उनके अनुसार विशेष रूप से संकट के समय नेता कुछ ऐसा अलौकिक तथा अनहोनी कार्य कर बैठता है कि लोग आश्चर्य चकित रह जाते हैं। ऐसे नेता के एक ओर सबल समर्थक तथा प्रशंसक होते हैं और दूसरी ओर कठोर आलोचक तथा निंदक होते हैं। भारतीय नेताओं में श्रीमती इन्दिरा गाँधी इसका सुन्दर उदाहरण हैं।

(10) **आत्म प्रत्यक्षीकृत दुर्बलतायें :** लासवेल (1930, 1948) के अनुसार प्रभावपूर्ण नेता अपनी आत्म प्रत्यक्षीकृत दुर्बलताओं से प्रेरित होते हैं। उन्होंने संसार के बड़े-बड़े नेताओं की जीवनी का अध्ययन किया और देखा कि उनके नेतृत्व प्रणोदन के पीछे रोगात्मक अधिक प्रेरक का हाथ था। यह अधिकार प्रेरक संभवत: नेता की व्यक्तिगत कमजोरियों की क्षतिपूर्ति के रूप में कार्य करता है। ये कमजोरियाँ संभवत: आरम्भिक जीवन में पिता या अन्य सार्थक पुरुष के संघर्ष के कारण उत्पन्न दु:खद अनुभूतियों के परिणाम हैं। लेनिन, ट्राट्स्की तथा गाँधी की जीवनी के अध्ययन से पता चलता है कि किशोरावस्था में परिवार के सार्थक पुरुषों के साथ उनका संबंध तनावपूर्ण था, जिसके कारण उनमें रोगात्मक अधिकार प्रेरक विकसित हुआ, जिससे प्रभावित होकर वे प्रभावशील नेता बन सके। परन्तु यह बात सदा नहीं देखी जाती है। बहुत सारे लोग आरंभिक जीवन या किशोरावस्था में परिवार के सार्थक पुरुष के साथ तनावपूर्ण सम्बन्ध रखने पर भी नेता नहीं हो पाते हैं और कुछ लोग इस तनावपूर्ण सम्बन्ध के अभाव में भी नेता बन जाते हैं (वोरचेल और कूपर, 1979)।

7.2.3 अर्जित शीलगुण

नेता में कुछ अर्जित शीलगुण पाये जाते हैं। समूह-स्थिति एक महत्त्वपूर्ण अर्जित शीलगुण है, जो किसी व्यक्ति के नेता बनने में सहायक होता है। मिल्स (1967) ने अपने अध्ययन में देखा कि संसार के अधिकांश प्रसिद्ध नेताओं का जन्म उच्च परिवारों में हुआ था। अन्य अध्ययनों से भी पता चलता है कि उच्च स्थिति के बच्चों की अपेक्षा निम्न स्थिति के बच्चों में समस्या विशेष के सम्बन्ध में अधिक सूचना तथा कौशल रहने पर भी उच्च स्थिति के बच्चे में नेता बनने की संभावना अधिक होती है (रुद्रस्वामी, 1964) वरशेल तथा कूपर (1979) के अनुसार नेता में प्रतिष्ठा तथा अधिकार का प्रेरक अधिक प्रबल होता है।

इस प्रकार स्पष्ट हो जाता है कि नेता या नेतृत्व के उपर्युक्त कई शीलगुण या विशेषतायें हैं। अत: किसी व्यक्ति में वे सभी शीलगुण जिस संख्या तथा मात्रा में उपलब्ध होते हैं, उसी सीमा तक उसके नेता होने की संभावना अधिक होती है, यदि अन्य बातें समान हों।

7.3 नेतृत्व का उद्‌भव या आविर्भाव

नेतृत्व के सम्बन्ध में एक जटिल समस्या यह है कि नेतृत्व का उद्‌भव तथा विकास कैसे होता है। दूसरे शब्दों में समस्या है कि किन परिस्थितियों में किसी व्यक्ति के नेता के रूप में उभरने की संभावना अधिक होती है? किसी व्यक्ति के नेता बनने में क्या केवल उसका अपना शीलगुण सहायक है? केवल विशेष परिस्थिति सहायक होती है अथवा दोनों सहायक होते हैं? इन समस्याओं के सम्बन्ध में वरशेल तथा कूपर (1979) ने निम्नलिखित कारकों या सिद्धांतों का उल्लेख किया है :

7.3.1 व्यक्तिगत कारक/महान मानव-सिद्धांत या शीलगुण-सिद्धांत

यह सिद्धांत इस विश्वास पर आधारित है कि नेता जन्मजात होता है, बनाया नहीं जाता है। व्यक्ति में कुछ ऐसे शीलगुण होते हैं, जिनके कारण वह नेता बन जाता है और उन शीलगुणों के अभाव में दूसरा व्यक्ति समान परिस्थिति

मिलने पर भी नेता नहीं बन पाता है। मार्टिन लुथर किंग, केनेडी, अब्राहम लिंकन, जवाहर लाल नेहरू, जमाल नासिर, आदि में कुछ ऐसे असाधारण शीलगुण थे, जिनके कारण वे न केवल नेता बन सके, बल्कि अपने समूह (राष्ट्र) के इतिहास का निर्माता भी। यदि उनके स्थान पर कोई दूसरा व्यक्ति होता तो समूह की रूपरेखा कुछ और होती।

इस सिद्धान्त के अनुसार नेतृत्व के उद्‌भव एवं विकास में तीन प्रकार के शीलगुण सहायक होते हैं :

(1) शारीरिक शीलगुण,

(2) व्यक्तित्व शीलगुण

(3) अर्जित शीलगुण

(1) टरमन (1904) के अनुसार शारीरिक आकार, लम्बाई,वजन, आकर्षण, आदि का प्रभाव नेतृत्व के आविर्भाव पर पड़ता है। अन्य बातें समान रहने पर अच्छे तथा आकर्षक शारीरिक शीलगुण वाले व्यक्ति के नेता के रूप में उभरने की संभावना अधिक होती है, वहाँ शारीरिक शीलगुण व्यक्तित्व शीलगुण की अपेक्षा अधिक प्रधान होते हैं।

व्यक्तित्व शीलगुणों में बुद्धि, शब्दाडम्बर, प्रभुत्व, आत्म संस्थापन, आत्म विश्वास, संवेगात्मक नियंत्रण, अभियोजनशीलता, लीचलापन, उदारता आदि मुख्य हैं। अध्ययनों से पता चलता है कि अनुयायियों की अपेक्षा नेता अधिक बुद्धिमान होते हैं (स्टॉगडील, 1948; मान, 1959; फिडलर, 1986)। इसका अर्थ यह हुआ कि अन्य बातें समान रहने पर मन्द बुद्धि की अपेक्षा तीव्र बुद्धि के सदस्य के नेता बनने की संभावना अधिक होती है। अध्ययनों से यह भी प्रमाणित होता है कि शब्दाडम्बर तथा नेतृत्व के बीच धनात्मक सम्बन्ध होता है। अन्त:समूह के जिस सदस्य में शब्दाडम्बर की योग्यता अधिक होगी, उसके नेता बनने की संभावना भी अधिक होगी, यदि अन्य बातें समान हों। मनोविश्लेषकों और विशेष रूप से एडलर के अनुसार नेतृत्व के उद्‌भव में दैहिक हीनता की अति क्षतिपूर्ति का हाथ होता है। जैसे- रोजवेल्ट एक रोगी बालक था, हिटलर नाटे कद का था और मनोग्रन्थि प्रतिक्रियाओं से पीड़ित था, लेनिन तथा महात्मा गाँधी का पारिवारिक जीवन विशेष रूप से किशोरावस्था में तनावपूर्ण था। अत: कहा जा सकता है कि इन व्यक्तियों के महान नेता के रूप में उभरने के पीछे हीनता की अतिक्षतिपूर्ति सक्रिय थी।

महान मानव-सिद्धांत (शीलगुण-सिद्धांत) के अनुसार नेतृत्व के उद्‌भव एवं विकास में अर्जित शीलगुणों का भी हाथ होता है। विशेष रूप से उच्च तथा प्रतिष्ठित परिवार में जन्म लेने वाले बच्चों में निम्न परिवार में जन्म लेने वाले बच्चों की अपेक्षा नेता बन जाने की संभावना अधिक होती है। मिल्स (1967) के अध्ययन से इस विचार का समर्थन होता है।

सियर्स आदि (1991) के अनुसार समूह के जिन सदस्यों में उच्च अभिलाषा एवं उपलब्धि की प्रेरणा होती है, उनके नेता बन जाने की संभावना अधिक होती है। ऐसे लोग सम्मान, उत्कर्ष तथा उत्तरदायित्व पाने के लिए अधिक इच्छुक रहते हैं।

एलिए (1988) के अनुसार नेता में अन्तर्वैयक्तिक कौशल अधिक होता है। उनमें सहकारिता, समूह आवश्यकताओं को देखने की क्षमता तथा उनकी संतुष्टि की प्रेरणा अधिक होती है। अत: ऐसे शीलगुण वाले सदस्य के नेता के रूप में उभरने की संभावना अपेक्षाकृत अधिक होती है।

स्पष्ट है कि यह सिद्धांत शीलगुणों को नेतृत्व के उद्‌भव तथा विकास का आधार मानता है। इस अर्थ में नेता जन्मजात होता है। लेकिन, यह सिद्धान्त नेता के आविर्भाव की व्याख्या करने में पूरी तरह सफल नहीं है। (1) यह सिद्धान्त ऐसे शीलगुणों को नहीं बतला पाता है जो सभी नेताओं में समान रूप से पाये जाते हैं। (2) यह सिद्धान्त इस बात की व्याख्या नहीं कर पाता है कि प्रारम्भिक जीवन में पिता के साथ संघर्ष के रखने वाले दैहिक दोष के कारण हीनता का भाव रखने वाले कुछ लोग क्यों महान बन जाते हैं और कुछ लोग नहीं बन पाते हैं। अत: नेतृत्व के आविर्भाव की व्याख्या केवल शारीरिक या व्यक्तित्व के आधार पर संभव नहीं है।

7.3.2 परिस्थिति कारक अथवा समय सिद्धांत या परिस्थिति सिद्धांत

इस सिद्धांत का विकास शीलगुण सिद्धांत की आलोचना के रूप में हुआ है। इस सिद्धांत के अनुसार नेतृत्व के आविर्भाव में व्यक्ति के शीलगुणों का हाथ नहीं होता है, बल्कि समूह परिस्थितियों की विशेषताओं का हाथ होता है। समूह का कौन सदस्य नेता होगा, इसका निर्धारण व्यक्ति के शीलगुणों से नहीं, समूह की परिस्थितियों से होता है। नेता जन्मजात नहीं, निर्मित होता है। व्यक्ति बलवान नहीं, समय बलवान होता है। कूपर तथा मैक गौफ (1969) ने कहा कि यदि हिटलर ने जर्मनी के बदले अमेरिका में अपने सिद्धांत को अपनाया होता तो उसे जेलखाने में फेंक दिया जाता या मानसिक संस्थान में रख दिया जाता। जयप्रकाश नारायण वर्षों तक क्रान्ति का सबक पढ़ाते रहे, परन्तु वे क्रान्तिकारी नेता के रूप में उभर नहीं सके। जब 1974 में समय ने उनका साथ दिया तो उन्हें क्रान्तिकारी नेता का स्थान मिल सका। इसी तरह अनुकूल समय या परिस्थिति ने महात्मा गाँधी, इन्दिरा गाँधी तथा राजीव गाँधी और देवगौड़ा को नेता बनने में मदद की। नेतृत्व के उद्‌भव तथा विकास पर परिस्थिति से सम्बन्धित अनेक कारकों का प्रभाव पड़ता है, जिनमें निम्नलिखित अधिक महत्त्वपूर्ण हैं–

7.3.2.1 समूह का निर्माण

जब कभी किसी नये समूह का निर्माण किया जाता है तो नेतृत्व के उभरने की संभावना बन जाती है। जब 1977 में जनता पार्टी का निर्माण हुआ तो श्री मोरारजी देसाई को तथा जब जनता दल का निर्माण हुआ तो 1989 में श्री वी० पी० सिंह को नेता बनने का अवसर मिला। इसी प्रकार जब संयुक्त परिवार टूट कर एकाकी परिवारों में विभाजित हो जाता है तो प्रत्येक एकाकी परिवार में किसी सदस्य को नेता या प्रधान बनने का अवसर मिलता है।

7.3.2.2 समूह का आकार

जब समूह बड़ा होता है तो उनकी क्रियायें जटिल बन जाती हैं और कई उप-समूहों का निर्माण हो जाता है। प्रत्येक उप-समूह का कोई नेता बन जाता है। इस प्रकार प्राथमिक नेता के साथ-साथ कई द्वितीयक नेता उभर आते हैं। स्पष्ट है कि समूह का आकार बढ़ने पर कई सदस्यों को नेता बनने का अवसर मिलता है। इतना ही नहीं, बल्कि समूह के आकार से नेतृत्व के प्रकार का भी निर्धारण होता है। बड़े समूहों में निष्पादन नेता तथा छोटे समूहों में संवेगात्मक नेता के विकसित होने की संभावना अधिक होती है।

7.3.2.3 समूह-संकट

जब समूह पर बाहरी आक्रमण का खतरा पैदा हो जाये अथवा लक्ष्य की ओर समूह की प्रगति रुक जाये तो इसे संकट की स्थिति कहेंगे। ऐसी परिस्थिति में समूह के पुराने नेता के हटने तथा नये नेता के उभरने की संभावना बन जाती है। ऐसे सदस्य को नेता बना दिया जाता है, जिसमें समूह के संकट को दूर करने की योग्यता, कौशल, ज्ञान, आत्म-विश्वास तथा इसी तरह के अन्य शीलगुण का बोध समूह के दूसरे सदस्यों को होता है। समूह संकट का प्रभाव न केवल नेतृत्व के आविर्भाव पर पड़ता है, बल्कि नेतृत्व के प्रकार पर भी।

7.3.2.4 समूह अस्थिरता

कभी-कभी समूह के सदस्यों के आपसी मतभेद से समूह विघटित होने लगता है, समूह-लक्ष्य खतरा में पड़ जाता है और अस्थिरता की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। ऐसे समय में पुराने नेता के हटने और नये नेता के बनने की संभावना बन जाती है। समूह के सदस्य ऐसे व्यक्ति को नेता चुन लेते हैं, जिसे वे अस्थिरता को समाप्त करने के योग्य समझते हैं। क्रौकेट (1955) ने अपने अध्ययन में देखा कि जिस समूह में समूह-लक्ष्यों को प्राप्त करने के साधनों के विषय में सदस्यों के बीच मतभेद होता है उसमें नये नेता के उभरने की संभावना अधिक होती है। यह एक वास्तविकता है कि नेता

बनने की इच्छा रखने वाला सदस्य अपने समूह में फूट डालकर अपने लिए परिस्थिति अनुकूल बना लेता है। वह जानता है कि गन्दे पानी में मछली मारना आसान होता है।

7.3.2.5 वर्तमान नेता की असफलता

जब समूह का वर्तमान प्रधान या नेता अपने दायित्व को निभाने में असफल हो जाता है तो उनके स्थान पर किसी नये नेता के उभरने की संभावना काफी बढ़ जाती है। नेता के अनेक कार्य हैं जैसे- समूह की नीति बनाना, योजनाओं का निर्माण करना, योजनाओं को कार्यरूप देना, सदस्यों को नियंत्रित रखना आदि। जब नेता इन कार्यों को समुचित रूप में नहीं कर पाता है और समूह लक्ष्य पूरा नहीं हो पता है तो उसकी जगह किसी दूसरे सदस्य को नेता चुन लिया जाता हौ क्रौकेट (1955) ने अपने अध्ययन में देखा कि 83% असफल नेताओं तथा केवल 39% सफल नेताओं के स्थान पर नये नेताओं का विकास हुआ। काज आदि (1951) ने भी अपने अध्ययन के आधार पर इसी तरह का परिणाम प्राप्त किया।

7.3.2.6 नेता की आवश्यकतायें

जब समूह के किसी सदस्य में नेता बनने की आंतरिक आवश्यकता रहती है तो अन्य सदस्यों की अपेक्षा उसके नेता बनने की संभावना अधिक हो जाती है। नेता के रूप में यह प्रतिष्ठा की आवश्यकता, आधिपत्य की आवश्यकता तथा अधिकार की आवश्यकता की संतुष्टि करने का प्रयास करता है। जब समूह के एक-दो सदस्यों में ऐसी आवश्यकता होती है तो केन्द्रित नेतृत्व का विकास होता है और जब कई सदस्यों में यह आवश्यकता होती है तो विपरीत नेतृत्व का विकास होता है। इस सम्बन्ध में हेमफिल (1961) का अध्ययन महत्त्वपूर्ण है।

7.3.2.7 समूह की आवश्यकतायें

समय-सिद्धांत अथवा परिस्थिति-सिद्धांत के अनुसार किसी समूह का नेता कौन होगा, यह बात उस समूह की आवश्यकता विशेष पर निर्भर करती है। भारत के विभाजन के बाद खण्डित भारत का नेता जवाहर लाल नेहरू ही क्यों बने? परिस्थिति सिद्धांत के अनुसार इसका कारण यह था कि उस समय एक ऐसे नेता की आवश्यकता थी, जिसके दिल में किसी एक समुदाय का दर्द न हो, बल्कि सभी समुदायों का दर्द हो।

इस प्रकार स्पष्ट हो जाता है कि नेतृत्व के आविर्भाव पर कई प्रकार के परिस्थिति-कारकों का प्रभाव पड़ता है। यह स्मरणीय है कि परिस्थिति से न केवल इस बात का निर्धारण होता है कि नेता कौन होगा, बल्कि इस बात का भी निर्धारण होता है कि वह किस प्रकार का नेता होगा। सैनफोर्ड (1950) के अनुसार सत्ताधारी अनुयायी सत्ताधारी नेता पसंद करते हैं। हाल्पिन (1955) के अनुसार कम खतरे वाली परिस्थितियों में सदस्य-उन्मुख तथा अधिक खतरे वाली परिस्थिति में कार्य-उन्मुख नेता के उभरने की संभावना अधिक रहती है।

समय-सिद्धांत या परिस्थिति-सिद्धांत के पक्ष में अनेक प्रमाण उपलब्ध हैं। फिर भी यह सिद्धांत नेतृत्व के उद्‌भव एवं विकास की पूरी व्याख्या नहीं कर पाता है। यह सिद्धांत इस बात की व्याख्या नहीं कर पाता है कि समान परिस्थिति रहने पर भी क्यों कुछ लोग बराबर नेता बनते रहते हैं और कुछ लोग हमेशा अनुयायी बने रहते हैं। असलियत है कि नेतृत्व के आविर्भाव में परिस्थिति तथा शीलगुण तथा दोनों का हाथ होता है। इस अर्थ में शीलगुण सिद्धांत तथा परिस्थिति सिद्धांत एक-दूसरे के पूरक हैं। वरशेल तथा कूपर (1979) के शब्दों में "इस प्रकार, ऐसा लगता है कि नेतृत्व का सर्वश्रेष्ठ सिद्धांत वह है जो परिस्थिति तथा शीलगुण दोनों विशेषताओं पर विचार करता है। इसे परस्पर क्रिया सिद्धांत कहते हैं।

7.4 नेतृत्व या नेता के प्रकार

नेतृत्व प्रकार या नेतृत्व शैली से इस बात का बोध होता है कि नेता का दृष्टिकोण क्या है, समूह के सदस्यों के साथ उनका सम्बन्ध कैसा है, समूह-लक्ष्य को किस प्रकार निर्धारित करता है तथा उसको प्राप्त करने के लिए कौन-सी विधि

अपनाता है। अतः समूह की रचना, इसके लक्ष्य, सदस्यों के बीच सम्बन्ध, आदि में अन्तर होने के कारण नेतृत्व में अन्तर होना स्वाभाविक है। समाज-मनोवैज्ञानिकों ने नेतृत्व या नेता का वर्गीकरण भिन्न-भिन्न दृष्टिकोणों से किया है, हम यहाँ कुछ मुख्य वर्गीकरण का संक्षेप में उल्लेख करना चाहेंगे।

7.4.1 कौनवे का वर्गीकरण

मार्टिन कौनवे (1915) ने तीन प्रकार के नेतृत्व का उल्लेख किया है :

(1) **भीड़ सम्मोहक** : इस प्रकार का नेता वह है जो किसी समूह को अस्थाई रूप से संगठित रखता है और बलपूर्वक अथवा चालबाजी से उसका नेता बन जाता है। सही अर्थ में वह अपने समूह का प्रतिनिधि नहीं होता है।

(2) **भीड़ व्याख्याता** : इस प्रकार का नेता वह है जो समूह के सदस्यों के विचारों, आवश्यकताओं तथा भावनाओं को प्रस्तुत करता है। वह समूह के लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए साथ-साथ सदस्यों की आवश्यकताओं की पूर्ति का प्रयास करता है।

(3) **भीड़ प्रतिनिधि** : इस प्रकार का नेता वह है, जो सही अर्थ में अपने समूह का प्रतिनिधित्व करता है।

7.4.2 बार्टलेट का वर्गीकरण

बार्टलेट (1926) ने नेता के तीन प्रकारों का उल्लेख किया है–

(1) **संस्थागत नेता** : इस प्रकार के नेता का सम्बन्ध किसी संस्था से होता है। यहाँ व्यक्ति किसी नियम, परम्परा या वरिष्ठता के आधार पर नेता बन जाता है। किसी कार्यालय के पदाधिकारी, कॉलेज के प्रिंसिपल, आदि ऐसे नेता के उदाहरण हैं।

(2) **प्रभावी नेता** : इस प्रकार का नेता वह है जो बल या कुचक्र के आधार पर किसी समूह का नेता बन जाता है। यह नेता कानवे के भीड़ सम्मोहक के समान है। संकट के समय ऐसे नेता अधिक देखे जाते हैं।

(3) **अनुसारी नेता** : इस प्रकार का नेता वह है, जो खुशामद के आधार पर नेता बनता है। वह सदस्यों को सुझाव देकर तथा समझा-बुझा कर नेता बन जाता है।

7.4.8 किम्बल यंग का वर्गीकरण

किम्बल यंग (1960) के अनुसार नेता के निम्नलिखित प्रकार हैं :

(1) **राजनीतिक अधिपुरुष** : अधिपुरुष वह नेता है, जो अपनी चालबाजी के बल पर नेता बन जाता है। ऐसा नेता प्रायः ध्वंसात्मक होता है।

(2) **प्रजातांत्रिक नेता** : इस प्रकार का नेता समूह के बहुमत का प्रतिनिधि होता है। वह नेता प्रजातांत्रिक समूह या राष्ट्र में पाया जाता है। वह सदस्यों द्वारा निर्वाचित होने के कारण सदस्य अभिमुखी होता है। इसकी पूरी व्याख्या बाद में की जायेगी।

(3) **सुधारक** : सुधारक वह नेता है, जो समाज की बुराइयों को दूर करने का बोझ उठाता है और स्वयं दुख उठाकर दूसरों के हित का काम करता है। वह अपने लक्ष्यों को पूरा करने के लिए तर्कों का सहारा लेता है। ऐसा नेता प्रायः अपालक होता है। महात्मा गाँधी, राजाराम मोहन राय, आदि की गणना इस प्रकार के नेताओं में की जा सकती है।

(4) **नौकरशाही** : इस प्रकार का नेता वह है जो प्रशासन चलाता है तथा नियम व कानून पर सख्ती से अमल करता है। ऐसा नेता अधिक व्यावहारिक होता है।

(5) **आन्दोलक** : इस प्रकार का नेता वह है जो कट्टर सुधारक होता है। लेकिन, सुधारक जहाँ तर्क का सहारा लेता है, वहाँ आन्दोलक हिंसा तथा क्रांति के सहारे सुधार लाने का प्रयास करता है। उसमें सहनशीलता या समझौता का गुण नहीं देखा जाता है।

(6) **कूटनीतिज्ञ :** कूटनीतिज्ञ वह नेता है, जो सरकार के प्रतिनिधि के रूप में अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों को सुधारने का प्रयास करता है। ऐसा नेता काफी सक्षम तथा कुशल होता है और समूह लक्ष्यों को पूरा करने के लिए उचित अनुचित किसी भी साधन का उपयोग कर सकता है।

(7) **सिद्धान्तवादी :** इस प्रकार का नेता सिद्धांत में अधिक विश्वास रखता है। वह तर्क अधिक करता है। उसमें व्यावहारिकता का अभाव होता है। उसमें विचार की प्रधानता होती है।

7.4.4 सारजेन्ट का वर्गीकरण

सारजेन्ट (1958) के अनुसार नेतृत्व या नेता के निम्नलिखित प्रकार हैं :

(1) **चमत्कारी नेता :** इस प्रकार का नेता वह है जिसमें दैवी शक्ति अथवा अलौकिक शक्ति समझा जाता है। धार्मिक नेता, जैसे- कृष्ण, ईसा, मोहम्मद, आदि इस प्रकार के नेता थे।

(2) **प्रतीकात्मक नेता :** इस प्रकार का नेता वह है जिसको कोई अधिकार प्राप्त नहीं होता है, केवल सामाजिक प्रतिष्ठा प्राप्त होती है। समाज-सुधारक नेता को प्रतीकात्मक नेता कह सकते हैं।

(3) **प्रधान :** किसी कार्यालय के प्रधान, किसी विद्यालय के प्रधानाध्यापक या किसी कॉलेज के प्राचार्य की गणना इसी प्रकार के नेतृत्व के अन्तर्गत की जाती है।

(4) **विशेषज्ञ :** इस प्रकार का नेता वह है, जो किसी विशेष क्षेत्र में निपुण तथा विशेषज्ञ होता है। ऐसा नेता विशेष क्षेत्र में कोई अद्‌भुत उपलब्धि होता है। न्यूटन, डार्विन इसी प्रकार के नेता हुए हैं।

(5) **कार्यकारी या प्रशासक :** इस प्रकार का नेता वह है, जो सरकारी विंभागों में प्रशासन का काम करता है। ऐसा नेता नियम व कानून के आधार पर काम करता है।

(6) **आन्दोलन :** इस प्रकार का नेता हिंसा के आधार पर सुधार लाने का प्रयास करता है। ऐसे नेता की व्याख्या पहले की जा चुकी है।

(7) **अवपीड़क नेता :** नेतृत्व का यह प्रकार प्रभुत्व तथा अवपीड़न ही पर आधारित है। लुटेरों या डाकुओं के सरदार को अवपीड़क नेता कहेंगे।

7.4.5 लिपीट का वर्गीकरण

लेविन, लिपिट एवं ह्वाइट (1939) ने नेतृत्व के निम्नलिखित प्रकारों का उल्लेख किया है–

(1) **सत्तावादी नेतृत्व :** सत्तावादी नेता उसे कहते हैं जो अपने समूह में सर्वे-सर्वा होता है। ऐसा नेता समूह की नीतियों का निर्माण स्वयं करता है और समूह की योजनाएँ स्वयं तैयार करता है। वह निरपेक्ष अधिकार अधिक रहता है और समूह के सदस्यों के बीच कार्यों का बंटवारा मनमाने ढंग से करता है। वह सदस्यों पर कड़ी निगरानी रखता है और उन्हें अपनी इच्छा के अनुसार दण्ड या पुरस्कार दे सकता है। इसके लिए वह किसी के सामने उत्तरदायी नहीं होता है और न उससे इसके लिए औचित्य पूछा जा सकता है। इस प्रकार के नेतृत्व में नेता के अलावा दूसरे सदस्यों को समूह के भविष्य कार्यक्रम की जानकारी नहीं रहती है। नेता तथा सदस्यों के बीच सीधा सम्पर्क नहीं होता है। ऐसा नेता कार्य -अभिमुखी होता है। वह सदस्यों के कल्याण की चिन्ता नहीं करता है और केवल समूह के लक्ष्य को प्राप्त करने का प्रयास करता है। समूह, कई उपसमूहों का निर्माण हो जाता है और कई छोटे-छोटे नेता उभर आते हैं। समूह का मनोबल बहुत नीचा होता है। अत: नेता के मर जाने या अनुपस्थित हो जाने पर समूह टूटने लगता है। पाकिस्तान के जिया, याहिया खान आदि सत्तावादी नेता के उदाहरण हैं। लिपिट या ह्वाइट (1943) ने अपने अध्ययन के आधार पर सत्तावादी नेतृत्व की उक्त विशेषताओं पर प्रकाश डाला।

(2) **प्रजातांत्रिक नेतृत्व :** प्रजातांत्रिक नेता उसे कहते हैं, जो समूह के बहुमत का प्रतिनिधि होता है और सदस्य-अभिमुखी होता है। वह समूह के सदस्यों के बीच सम्बन्ध के सहयोग से नीतियों तथा योजनाओं का निर्माण करता